# कुँवर नारायण और उनका युग

## 2.1 कुँवर नारायण की कविता में युगबोध

किसी भी काल का साहित्य अपने समय का प्रतिबिम्ब भी होता है और कई बार वह अपने समय का मूल्यांकन भी कर रहा होता है। यही कारण है कि समाज के स्पंदन को साहित्य में महसूसा जा सकता है। जिस रचनाकार को अपने युग का बोध जितना अधिक होगा उसकी रचना में समाज की उतनी ही सशक्त उपस्थिति होगी। आज के साहित्यकारों के युगबोध के संदर्भ में डॉ. हरिशंकर पाण्डेय लिखते हैं- "आज का साहित्यकार जितना अधिक अपने युगबोध से प्रभावित है उतना आज से पहले कभी नहीं था। विज्ञान के विकास ने स्थान और काल की सीमाएँ तोड़ दीं और उसकी ऐतिहासिक चेतना की परिधि का विस्तार कर दिया। आज विश्व के किसी कोने में घटने वाली घटना उसकी संवेदना को प्रभावित किए बिना नहीं रहती।"[1]

कुँवर नारायण की कविताओं में कोरी भावुकता नहीं है। वे अपने समय की प्रत्येक घटना को पैनी नज़र से देखते हैं और समकालीन संदर्भों से जुड़े सवालों को अपनी कविताओं में दर्ज करते हैं। उन्होंने अपनी एक अलग किस्म की शैली ईजाद की है। वे क्रांति और विद्रोह की भाषा के बजाय चिंतन-मनन की भाषा में काव्य रचते हैं इसलिए इनकी कविताओं में युगबोध महज घटनाओं तक सीमित न होकर जीवन के विभिन्न संदर्भों तक फैला हुआ है। ध्यातव्य है कि मनुष्य का जीवन प्रतिपल तीव्र गति से बदल रहा है। इस तेजी से बदलते जीवन में बहुत कुछ छूटता जा रहा है। कुँवर नारायण की कविता जीवन की आपाधापी और तकनीकी विकास के चूहा-दौड़ में शामिल होने से इंकार की कविता है। वैचारिकता को जीवन और काव्य में प्रमुखता से स्थान देने वाले कुँवर नारायण जब मिथक और इतिहास की घटनाओं को आधार बनाकर भी अपनी कविता रचते हैं तो अपने समय के सवालों से उनकी नज़र ओझल नहीं होती है। प्रायः वे

स्मृति के अतीत में जाते ही इसलिए हैं क्योंकि वहाँ उन्हें अपने समय से जुड़े सवालों के लिए एक व्यापक फलक मिलता है। इस उपअध्याय में कुँवर नारायण की कविताओं में दर्ज उनके युगबोध को समझने की कोशिश की गयी है।

साहित्य और समाज के घनिष्ठ संबंधों के विषय में कई विद्वानों ने लिखा है। कुँवर नारायण की कविता में उनका समाज बोलता है। समाज जिस मानव से बनता है, वह और उसका जीवन कुँवर जी की कविता का केंद्र है। इस हिंसा प्रधान युग में जब अखबारों के पन्ने हत्या और लूट-पाट की ख़बरों से भरे रहते हैं, ऐसे वक्त में कुँवर नारायण अपने समय की भयावहता को कविता में दर्ज करते हुए लिखते हैं-

"आज सारे दिन बाहर घूमता रहा

और कोई दुर्घटना नहीं हुई।

आज सारे दिन लोगों से मिलता रहा

और कहीं अपमानित नहीं हुआ।

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

और सबसे बड़ा चमत्कार तो यह

कि घर लौटकर मैंने किसी और को नहीं

अपने को ही लौटा हुआ पाया।"[2]

वास्तव में वर्तमान समय में जीवन इतना त्रासदीपूर्ण हो चुका है कि यदि व्यक्ति घर लौटने पर अपने को लौटा हुआ पाये तो यह चमत्कार सदृश्य है। रोज घटने वाली दुर्घटना, रोज

मिलने वाला धोखा, अपमान मनुष्य को उसके मूल-व्यक्तित्व से इतना दूर लेकर चला जाता है कि कई बार उसे स्वयं को पहचानना मुश्किल हो जाता है। हमारे समाज में मनुष्य अगर गलत को गलत कह पाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता तो इसकी क्या वजह है? जीवन की सार्थकता जिन मूल्यों के अनुपालन में है, आज का मनुष्य उन मूल्यों को दर किनार कर अगर समझौतावादी रुख़ अपना लेता है तो इसमें दोष सिर्फ़ मनुष्य का नहीं बल्कि उस समाज का भी है जो उसे ग़लत को ग़लत नहीं कहने देता। 'ज़रूरतों के नाम' शीर्षक कविता में कुँवर नारायण लिखते हैं-

"क्योंकि मैं ग़लत को ग़लत साबित कर देता हूँ

इसलिए हर बहस के बाद

ग़लतफ़हमियों के बीच

बिल्कुल अकेला छोड़ दिया जाता हूँ

xxxxxxxxxxxxxxxxxx

और उनकी असहिष्णुता के बीच

मैं किसी अपमानजनक नाते की तरह

बेमुरौव्वत तोड़ दिया जाता हूँ।"[3]

आज समाज में मनुष्यता को हारता हुआ देखना निश्चय ही निराशाजनक है। आज हालत यह है कि जब मनुष्य भ्रष्टाचार में लिप्त हो जाता है तो व्यवस्था उसकी सहायता करने लग जाती है। कुँवर नारायण की कविता विडम्बनाओं से जन्म लेती है। यह हमारे समय की विडम्बना ही है कि बहुत बड़े-बड़े घोटालों में खानापूर्ति के नाम पर उन लोगों पर कार्रवाई की जाती है जिनकी

उनमें सहभागिता न्यूनतम या नहीं ही होती है। चोरी, हत्या, रिश्वतखोरी जिस समय में दैनिक समाचार का हिस्सा बन चुका है, उस नाज़ुक वक्त को अपनी कविता में दर्ज करते हुए कवि लिखते हैं-

"बैंक में लम्बा गबन- क्लर्क पकड़ा गया।

सेठ का दिवाला- कोई गरीब रगड़ा गया।

कैनेडी की हत्या।

हत्यारा गिरफ्तार

हत्यारे की हत्या

असली हत्यारा फरार।"[4]

असली हत्यारे का फरार हो जाना व्यवस्था की नाकामी को दर्शाता है। पुलिस की जो छवि समाज में बनती जा रही है वह यूँ ही नहीं है। वर्तमान समय में पुलिस विभाग अनैतिक कार्यों में धड़ल्ले से संलिप्त है। रिश्वतखोरी को पुलिस प्रशासन ने अपना प्रमुख लक्ष्य मान लिया है। आम लोगों में पुलिस के प्रति जो धारणा विकसित हुई है वह बहुत सकारात्मक नहीं है। हालाँकि कुछ पुलिस वाले ईमानदार भी हैं परन्तु उनकी संख्या न के बराबर है। कुँवर नारायण की 'एक जन्मदिन जन्मस्थान पर' नामक कविता पुलिस प्रशासन के भ्रष्ट रवैये का पर्दाफाश करती है –

"बोले दरोगा जी,"सोच लो रमेश्वर

दुनिया नहीं चलती खाली ईमान पर,

होते दो-चार ही गाँधी से मानव

बाकी आम लोग तो न देवता न दानव,

मामूली लोग हम, छोटी सी जिन्दगी,

क्या हमें सफाई और क्या हमें गन्दगी

हमको तो किसी तरह पापी पेट भरना है।

थाने और घर के बीच गुजर बसर करना है।"[5]

कुँवर नारायण की कविताएँ समय और समाज से उनके गहरे सरोकारों को दिखाती हैं। समाज का उपेक्षित वर्ग भी उनकी कविता में स्थान पाता है। उनकी कविता इस अमानवीय समय में हममें मानवता के बीज बोने का और उसे सींचने का यत्न करती है। कुँवर जी की नज़रों में दुनिया की तमाम उपलब्धियों से बड़ी उपलब्धि मनुष्यता की पक्षधरता का साहस है। यह साहस उनकी कविता में आद्यन्त लक्षित किया जा सकता है। 'कोई दूसरा नहीं' काव्य-संग्रह में उनकी एक कविता 'आदमी का चेहरा' नाम से संगृहीत है। इसमें उस कुली की व्यथा है जिसे उसके नाम से जानने के बजाय शर्ट पर टंगे नंबर से पहचाना जाता है-

"मैंने उसके चेहरे से उसे

कभी नहीं पहचाना,

केवल उस नंबर से जाना

जो उसके लाल कमीज़ पर टँका होता।

आज जब अपना सामान ख़ुद उठाया

एक आदमी का चेहरा याद आया।"[6]

सामाजिक भेदभाव किसी भी समाज के उत्थान में बाधक बनता है। कुँवर नारायण किसी भी किस्म के भेदभाव के खिलाफ़ थे। चाहे वह धर्म आधारित हो, पद या ओहदा पर आधारित हो, आर्थिक आधार पर हो या रंग-भेद आधारित। कुँवर जी की जन-पक्षधरता उन्हें विश्वकवि के रूप में स्थापित करती है। सामान्य जन के दुःख-दर्द को इतनी ही आत्मीयता से महसूसा जाना चाहिए। कुँवर जी की इस विशिष्टता को लक्षित करते हुए रेखा सेठी लिखती हैं- "उनकी सामाजिक चिंता देश-दुनिया की भौगोलिक सीमाओं को बेमानी कर देती है। उनकी दृष्टि रंग-भेद से पीड़ित काले लोगों पर भी है और वियतनाम का युद्ध झेलते मानवीय चेहरों पर भी। उनकी काव्य-चेतना में आत्म का विस्तार ही उन्हें विश्वकवि बनाता है।"[7] सम्पूर्ण धरती को एक मानने के प्रयोजन को कुँवर नारायण की कविता में हम फलित होते पाते हैं। यहाँ जीवा और कुमारायण के उस संवाद को उद्धृत किया जा सकता है जिसमें कुमारायण अपने पुत्र कुमारजीव के संदर्भ में अपनी पत्नी जीवा से बात कर रहा है। यह संवाद इसलिए विशिष्ट है क्योंकि यह कवि की जीवन-दृष्टि के उस पक्ष को उजागर करता है जिसमें पूरी धरती को एक मानने का उपक्रम है। कुमारायण अपनी पत्नी और कुमारजीव की माँ से कहता है-

"वह तुम्हारा पुत्र है अभी तक

जब तक तुम्हारी गोद में है :

पृथ्वी पर पाँव रखते ही

पूरी पृथ्वी उसकी माँ हो जाती है"[8]

कुमारायण और जीवा के बीच के संवाद का यह एक अंश मात्र है। दरअसल यह पूरा संवाद कुँवर नारायण के युगबोध को समझने की दृष्टि से उल्लेखनीय है। कवि मनुष्य की सीमा को किसी एक परिवार, राज्य या देश की सीमा तक सीमित नहीं रखना चाहते हैं। कवि की दृष्टि में पूरी पृथ्वी मनुष्य की माँ है और प्रत्येक जीव से मनुष्य का नाता है। यह अनायास नहीं है कि कुँवर जी की कई कविताओं में वृक्ष, चिड़िया, जानवर यहाँ तक की बारिश और बादल तक का मानवीकरण होते हुए हम पाते हैं। उनकी चिंताओं के केंद्र में मनुष्य और मनुष्य से संबंधित समूचा पारिस्थितिकी तंत्र है। इसी जीवन-दृष्टि का प्रतिफलन कुमारायण का वह जवाब है जो वह अपनी पत्नी को देता है-

"मेरे उद्देश्यों में एक गृहस्थी का प्रबन्ध नहीं

एक विद्याकेन्द्र की व्यवस्था थी,

मेरी चिंताओं में एक परिवार नहीं

पूरा मानव-परिवार था।"[9]

यह पूरे मानव-परिवार की चिंता कुमारायण की भी चिंता है और कुँवर नारायण की भी चिंता है। आज उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव की यह देन है कि हम प्रकृति के विषय में, पर्यावरण के विषय में, अपने आस-पास के पारिस्थितिकी तंत्र के विषय में नहीं सोच रहे हैं। हमारा 'स्व' दिनोंदिन सिमटता जा रहा है। हमें अपनी महत्वाकांक्षाओं को छोड़कर दूसरे के विषय में सोचने तक का अवकाश नहीं है। एक कवि जब मनुष्य की यह दुर्गति देख रहा होता है तो उसका चिंतित होना स्वाभाविक है। यह चिंता साहित्य के सरोकारों में शामिल है और विभिन्न रूपों में समय-समय पर हम साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति होते हुए पाते हैं। जब कामायनी में जयशंकर प्रसाद यह लिखते हैं-

"अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा?

यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा!

औरों को हँसते देखो मनु-हँसो और सुख पाओ,

अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ !"[10]

तो उनका भी आशय इसी 'स्व' को विस्तृत करने का होता है जो भौतिकतावाद के दबाव में संकुचित होता जा रहा है। यह उपभोक्तावादी संस्कृति एक दिन में यकायक नहीं बनी है इसके लिए लगातार प्रचार-तंत्र ने काम किया है। सत्ता से इसे संरक्षण प्राप्त हुआ है। आज बाज़ारों को 'लग्ज़री-गुड्स' से भर दिया गया है, दूसरी तरफ़ इस संसार की एक बड़ी आबादी अपनी मौलिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रही है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज जब बाज़ार विलास की सामग्रियों से पटा पड़ा है उस वक्त में भी संसार की बहुत बड़ी आबादी का यथार्थ भूख है। कवि बाज़ार की भाषा में संवाद नहीं कर सकता क्योंकि उसके सरोकारों में सामान्य जन और उसकी पीड़ा शामिल है। कुँवर नारायण की कई कविताओं में आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्त होते हुए हम पाते हैं।सन् 1979 में उनकी कविताओं का संग्रह 'अपने सामने' प्रकाशित हुआ। भारत के इतिहास में यह समय इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इस समय भारत का सामान्य जन आपातकाल की विभीषिका को महसूस कर रहा था। कुँवर जी प्रतीक की भाषा में सामान्य जन की मनःस्थिति को व्यक्त करते हैं-

"उसके दोनों हाथ उसके पीछे बाँध दो,

और एक बेहतरीन झूठ उसकी आँखों पर,

शायद वह कुछ नहीं कहेगा।

वह यह मान लेगा कि शायद इसी में उसका भला है।"[11]

हर वह चीज जिसे जहाँ, जिस भूमिका में होना चाहिए उसका वहाँ उस रूप में न होना कवि को विचलित करता है। एक कवि सिर्फ अपने समय का द्रष्टा नहीं होता बल्कि अपनी कविताओं के माध्यम से वह अपने समय का मूल्यांकन भी करता है। 'अपने सामने' संग्रह में ही कुँवर नारायण की एक कविता है- 'इन्तिज़ाम'। यह कविता व्यवस्था का भंडाफोड़ करती है तथा हम जिस समय में जी रहे हैं उसकी भयावहता से हमारा साक्षात्कार कराती है। इस कविता में कवि प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। डॉक्टर के हाथों में 'सर्जिकल चाकू' की जगह 'ज़ंग लगा भयानक छुरा' का होना हमें भयभीत करता है या कवि जब यह लिखते हैं कि "मैं अस्पताल गया/ लेकिन वह जगह अस्पताल नहीं थी।/ वहाँ मैं डॉक्टर से मिला लेकिन वह आदमी डॉक्टर नहीं था।/ उसने नर्स से कुछ कहा/ लेकिन वह स्त्री नर्स नहीं थी।/ फिर वे ऑपरेशन-रूम में गये लेकिन वह जगह ऑपरेशन रूम नहीं थी।/ वहाँ बेहोश करनेवाला डॉक्टर/ पहले ही से मौजूद था-मगर वह भी/ दरअसल कोई और था।"[12]

अस्पताल की जगह पर अस्पताल का न होना और डॉक्टर की भूमिका में डॉक्टर का न होना अव्यवस्था मात्र नहीं है। यह भयावह है। एक व्यक्ति अपनी ज़िन्दगी की रक्षा के लिए भरोसे के साथ अस्पताल जाता है। डॉक्टर को भगवान का दूसरा रूप कहा जाता है क्योंकि वे जीवन की रक्षा करते हैं। ऐसे में अस्पताल और डॉक्टर का उस रूप में न होना जिस रूप में उसे होना चाहिए सीधे-सीधे मानव जीवन को प्रभावित करता है। आज बाज़ार के प्रभाव में किस प्रकार अस्पतालों में व्यक्ति की जान का सौदा किया जाता है यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। ऐसे में यह कविता आज के समय में प्रासंगिक नज़र आती है।

पिछले दशकों में हमने प्रकृति का ख़ूब दोहन किया है। हमने अपने आस-पास अपनी मर्जी से कंक्रीट का जाल बुना और ऊँचे-ऊँचे महलों को विकास मान बैठे। हम यह भूल गये कि प्रकृति हमारा प्रतिद्वंद्वी नहीं है। हमारा उससे रिश्ता साहचर्य का रिश्ता है जिसे हमने प्रतिद्वंद्विता के रिश्ते में तब्दील कर दिया है। कवि मनुष्य की बर्बरता से भी वाकिफ़ है और प्रकृति की उदारता से भी। कुँवर नारायण की कविताओं में प्रकृति की उपस्थिति विभिन्न रूपों में हम पाते हैं। उन्हें अपने घर लौटने पर आँगन का बूढ़ा वृक्ष चौकीदार की तरह नज़र आता है। ऐसा चौकीदार जो गर्मी, बारिश, सर्दी हर मौसम में चौकन्ना रहता है और जिसकी ठंडी छाँव में बैठकर कवि को सुकून मिलता है और जिसके कट जाने पर उसकी अनुपस्थिति कवि को झकझोरती है। कुँवर जी की यह ख़ासियत है कि उनकी कविताओं में बात व्यष्टि से शुरू होती है और समष्टि तक की यात्रा करती है। आँगन के एक वृक्ष से बात शुरू होती है और इस संकल्प पर जाकर ख़त्म होती है-

"बचाना है-

नदियों को नाला बन जाने से

हवा को धुआँ बन जाने से

खाने को जहर हो जाने से :

बचाना है-जंगल को मरुस्थल हो जाने से,

बचाना है-मनुष्य को जंगल हो जाने से।"[13]

जब वर्तमान समय के पारिस्थितिकी तंत्र के परिप्रेक्ष्य में हम इन पँक्तियों का मूल्यांकन करते हैं तो कुँवर जी की सचेत दृष्टि सामने आती है। प्रदूषण की समस्या आज केवल महानगरों

की समस्या नहीं है इसका प्रसार शहर और गाँव की ओर भी हो रहा है। जीवनदायिनी नदियों में कारखानों से निकला अपशिष्ट कचरा बहाया जा रहा है। हवा में लगातार ऑक्सीजन की मात्रा घट रही है। मिट्टी में अत्यधिक रासायनिक उर्वरक डालकर हम फसल की जगह पर जहर उपजा रहे हैं। उपर्युक्त पँक्तियों में कुँवर जी कि जो चिंता है वह वास्तव में मानव जीवन पर मँडराते खतरे की वजह से है। एक अन्य कविता में कुँवर जी ने पेड़ और अपने आत्मीय रिश्ते को व्यक्त किया है। कविता का शीर्षक है- 'मेरा घनिष्ठ पड़ोसी'। इस कविता में भी हम प्रकृति का मानवीकरण होते हुए देखते हैं। अपने और पेड़ के प्रगाढ़ रिश्ते को व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं-

"मेरी उससे गाढ़ी दोस्ती हो गई है

इतनी कि जब हवा चलती

तो लगता वह मेरा नाम लेकर

मुझे बुला रहा,

सुबह की धूप जब उसे जगाती

वह बाबा की तरह खखारते हुए उठता

और मुझे भी जगा देता।"[14]

जब मनुष्य प्रकृति से इस तरह का आत्मीय रिश्ता महसूस करेगा तो वह उसका दोहन नहीं करेगा। हमारे समय के मनुष्यों के लिए ये पँक्तियाँ सीख हैं। जिस समय प्रकृति पर आधिपत्य स्थापित करने की होड़ मची हो, वृक्षों को काटकर लोहे और कंक्रीट की बहुमंजिली इमारत की निर्मिति को विकास समझा जा रहा हो उस समय में वृक्ष में अपने किसी आत्मीय को ढूँढना प्रकृति के साथ कवि के आत्मीय सरोकारों का साक्ष्य है।

कुँवर नारायण के सरोकारों में सिर्फ मनुष्य शामिल नहीं है बल्कि समस्त पारिस्थितिकी तंत्र पर कवि की निगाह है। अपने समय पर पैनी निगाह रखने का यह परिणाम है कि कुँवर नारायण अपनी कविताओं में जब समाज के उपेक्षित वर्ग का चित्रण करते हैं तो पाठक के समक्ष एक बिम्ब निर्मित होजाता है। जब कवि पीढ़ी-दर-पीढ़ी पालकी ढोने वाले के दुःख-दर्द का बयान अपनी कविता में करते हैं तो पँक्तियाँ उस उपेक्षित समाज के मर्म को उद्घाटित करती हैं। सर्वहारा वर्ग की पीढ़ियों के संघर्ष को शब्दांकित करते हुए कुँवर जी लिखते हैं-

"इस गाँव से उस गाँव तक

नंगे बदन, फेंटा कसे,

बारात किसकी ढो रहे ?

किसकी कहारी में फँसे ?

यह क़र्ज़ पुश्तैनी अभी किश्तें हज़ारों साल की।

काँधे धरी यह पालकी है किस कन्हैयालाल की ?"[15]

उपर्युक्त पँक्तियों में कवि की संवेदना उस शोषित वर्ग के प्रति है जो शोषण के चक्रव्यूह में सदियों से फँसता आया है। शोषित वर्ग के दर्द में कवि की यह हिस्सेदारी उनकी संवेदनशीलता की गहराई को दर्शाता है।कुँवर नारायण की कविता में संवेदनशीलता केवल एक भाव नहीं है बल्कि वह एक ज़रूरी यकीन है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच का रिश्ता बर्बरता की शर्त पर कायम नहीं है। कुँवर जी अपनी कविता के माध्यम से मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरी को कम करना चाहते हैं। उनकी निगाह अपने समय और समाज पर है। वे देख पा रहे हैं कि आज का मनुष्य अपनी जड़ों से कटा हुआ है। उसने नैतिकता को अपने जीवन से बाहर करने में कोई

कसर नहीं छोड़ी है। आज के मनुष्य को कुँवर नारायण की कविताएँ नैतिक विजन देती हैं जिससे वह आत्म-मूल्यांकन कर सके। नैतिकता के प्रतिआग्रह को उनकी कई कविताओं में देखा जा सकता है। उनका पात्र 'सम्मेदीन' जिस लड़ाई को लड़ रहा है वह इस खोयी हुई नैतिकता को बचाने की लड़ाई भी है।'सम्मेदीन' जानता है कि वह जिस युद्ध को लड़ रहा है उसमें वह मारा जायेगा लेकिन वह यह भी जानता है कि यह लड़ाई किसी एक व्यक्ति की लड़ाई नहीं है। यह लड़ाई हर उस चेतना की लड़ाई है जो उजाले को बचाए रखने के लिए अपनी जान तक की परवाह नहीं कर रहा। कुँवर नारायण जोर देकर कहते हैं कि 'सम्मेदीन' एक व्यक्ति मात्र नहीं है वह एक नैतिक साहस का नाम है-

"दुनिया को ख़बर रहे/ कि एक बहुत बड़े नैतिक साहस का/ नाम है सम्मेदीन।"[16]

'सम्मेदीन' की लड़ाई जिस नैतिकता की लड़ाई है वह आज के समय में दुर्लभ है।आज का मानव लड़ाई तो रोज लड़ता है परन्तु उसमें नैतिकता का लेशमात्र भी नहीं होता। लड़ाई से ज़्यादा महत्वपूर्ण उसका तरीका और उसके पीछे का उद्देश्य होता है।'सम्मेदीन' का उद्देश्य बड़ा है, इसलिए उसकी लड़ाई बड़ी है। कुँवर जी को अपने समय का बोध है इसलिए वे जानते हैं कि नैतिक साहस के बिना समाज को कोई नयी दिशा नहीं दिखला सकता। कुँवर जी की कविताओं में उनका समय जिस तरह व्यक्त हुआ है वह अपने समय पर कवि की पैनी निग़ाह को दर्शाता है। जीवन का कोई भी संदर्भकवि की निग़ाह से ओझल नहीं हुआ है। कुँवर नारायण की कविताओं में निहित युगबोध उन्हें आधुनिक हिंदी कविता के प्रतिनिधि हस्ताक्षर के रूप में प्रतिष्ठित करता है

**संदर्भ सूची:**


1. डॉ. हरिशंकर पाण्डेय, धर्मवीर भारती : चिन्तन और अभिव्यक्ति, पृष्ठ-42
2. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-25
3. वही, पृष्ठ-64
4. वही, पृष्ठ-95
5. कुँवर नारायण,कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-151
6. वही, पृष्ठ-92
7. (सं) रेखा सेठी, मैं कहीं और भी होता हूँ, पृष्ठ-19
8. कुँवर नारायण,कुमारजीव, पृष्ठ-46
9. वही, पृष्ठ-44
10. जयशंकर प्रसाद,कामायनी, पृष्ठ-52
11. कुँवर नारायण,अपने सामने, पृष्ठ-30
12. वही, पृष्ठ-28
13. कुँवर नारायण,इन दिनों, पृष्ठ-55
14. वही, पृष्ठ-52
15. कुँवर नारायण,कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-14
16. वही, पृष्ठ-18

## 2.2 कुँवर नारायण की दृष्टि में उनके समकालीन रचनाकार

कुँवर नारायण लगभग छः दशकों तक साहित्य-सृजन में सक्रिय रहे। इतने लंबे समय तक साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय रहने के बावजूद कभी वे किसी गुट, समुदाय, वाद या विचारधारा से बँधकर नहीं रहे। भारतीय चिंतन-धारा और पाश्चात्य चिंतन-पद्धति दोनों का ही असर उनके व्यक्तित्व और चेतना पर है परन्तु वे लकीर के फ़कीर कभी नहीं बने। वे साहित्य में उस मिजाज़ का प्रतिनिधित्व करते हैं जहाँ साहित्य किसी विचारधारा या वाद से पहले मनुष्य के आत्मिक विकास की कोशिश करता है। कुँवर नारायण को कई बार नयी कविता आंदोलन से जोड़ा जाता है। कई बार मार्क्सवाद के प्रभाव को उनमें लक्षित किया जाता है। कई आलोचकों ने यह भी माना है कि उनकी कविताओं पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव है। इन प्रभावों को कुँवर नारायण कभी नकारते भी नहीं हैं, परन्तु उन्होंने अपनी कविताओं को कभी किसी वाद के दायरे में रखकर नहीं लिखा है। वादों के खाँचे में बाँटकर साहित्य का जो वर्गीकरण किया जाता है कवि इस प्रकार के इतिहासीकरण का विरोध करते हुए कहते हैं- “जहाँ, वाद प्रमुख हो जाता है वहाँ साहित्य की शक्ति कम हो जाती है। जो साहित्य जीवन से जुड़ता है उसमें जीवन्तता के लक्षण दिखते हैं। यदि कोई लेखन कमजोर है तो वह किसी भी ‘वाद’ से स्वीकृत नहीं हो पाता। उस समय ‘सप्तकों’ को लेकर ऐसा विवाद नहीं था जैसा बाद में हुआ।”[1]

चूँकि कुँवर नारायण कभी किसी वाद में बँधकर नहीं रहे इसलिए उन्होंने जब भी किसी रचनाकार के विषय में लिखा तो बड़ी बेबाक़ी से लिखा। इस उपअध्याय के अंतर्गत यह जानने की कोशिश की गयी है कि कुँवर जी अपने समकालीन रचनाकारों के विषय में क्या राय रखते हैं। इसे जानने के लिए प्रमुख आधार के रूप में कुँवर जी के संस्मरणों, टिप्पणियों, भेंट-वार्ताओं तथा समीक्षाओं का सहारा लिया गया है। किसी रचनाकार के व्यक्तित्व और कृतित्व का कौन-सा पक्ष कुँवर जी को आकर्षित करता है यह उनकी प्राथमिकता और जीवन-दृष्टि को दर्शाता है।

अतः इस उपअध्याय में कुँवर जी के समकालीन साहित्यकारों को उनकी दृष्टि से समझने के क्रम में स्वयं उनके काव्य-मूल्य और जीवन-बोध भी प्रकट हुए हैं। वे अपने युग के जिन रचनाकारों का ज़िक्र बार-बार करते हैं उनमें प्रमुख हैं- रघुवीर सहाय, अज्ञेय, शमशेर,निर्मल वर्मा, नेमिचंद्र जैन, विजयदेव नारायण साही आदि।

**रघुवीर सहाय**

रघुवीर सहाय और कुँवर नारायण के रिश्ते का ज़िक्र इस शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय के अंतर्गत किया गया है। इसलिए दोहराव से बचते हुए यहाँ रघुवीर सहाय की कविताओं के विषय में कुँवर जी की राय जानने की कोशिश की गयी है। रघुवीर सहाय की कविताओं में जो तीव्रता और गहराई है उसकी कुँवर जी सराहना करते हैं, परन्तु रघुवीर जी भाषा और विचारों के स्तर पर अपने को तत्काल तक जो सीमित रखते हैं यह कुँवर जी को खलता है। रघुवीर सहाय की कविताओं के विषय में कुँवर जी लिखते हैं- "उनकी कृति और विश्वबोध में कुछ महत्वपूर्ण आयाम अछूते रह जाते हैं।... उदाहरण के लिए उनकी कविताओं में स्त्री की जो मध्यवर्गीय और निम्न-मध्यवर्गीय छवि उभरती है, उसमें दयनीयता है पर चुनौतियां नहीं। स्त्री-चरित्र का या दूसरा पक्ष यदा-कदा उभरता भी है, तो धुँधला-सा ही।"[2]

रघुवीर सहाय के साथ कुँवर नारायण का घनिष्ठ संबंध रहा है। लखनऊ विश्वविद्यालय से दोनों ने साथ ही अंग्रेजी में एम.ए. किया था। 'लखनऊ लेखक संघ' से लेकर लखनऊ कॉफ़ी हाउस की बहसों तक दोनों की घनिष्ठता बनी रही। रघुवीर सहाय के रचना-कर्म को कुँवर नारायण ने बहुत नज़दीक से देखा है इसलिए जब वे रघुवीर सहाय की भाषा और कविता पर अपने विचार व्यक्त करते हैं तो समग्रता में करते हैं। रघुवीर सहाय के यथार्थबोध और उनकी भाषा को कुँवर जी एक कड़ी के रूप में देखते हैं। रघुवीर सहाय अपनी कविताओं में उन्हीं

बिम्बों एवं प्रतीकों को लेते हैं जो उनका अनुभव संसार है अर्थात् दैनिक जीवन के परिचित बिम्बों और प्रसंगों के माध्यम से वे अपनी बात रखते हैं। परन्तु यह निजी अनुभव कविता में इस रूप में प्रयुक्त होता है कि उससे युगीन यथार्थ को विस्तृत किया जा सके। इस विषय में कुँवर नारायण लिखते हैं- "निजी के साधारणीकरण के दौरान ही उनकी कविता उस मानवीय करुणा और सच्चाई को स्पर्श करती है जो उनकी कविता का सबसे मार्मिक और मौलिक हिस्सा है। परिवार, स्त्री, राजनीति, पाखंड, दंभ, नासमझी, मृत्यु, हत्या आदि कुछ ऐसे स्थायी बिंदु हैं जिनके इर्द-गिर्द ही उनकी कविता घूमती और फैलती है।"[3]

यथार्थ को निजी अनुभव तक सीमित रखने को कुँवर नारायण एक तरफ उनकी शक्ति मानते हैं तो दूसरी तरफ उनकी सीमा। अपनी शक्ति और सीमाओं के साथ रघुवीर सहाय नयी कविता के उन विशिष्ट कवियों में से हैं जिनकी जड़ें मनुष्य के जीवन-विवेक में हैं। वे शक्तियाँ जिनसे मानव-जीवन प्रदूषित होता है, रघुवीर सहाय की कविताओं में उनका निषेध है। अपने देश के सामाजिक और राजनीतिक पक्ष की विडम्बनाओं को रघुवीर सहाय ने जिस मार्मिकता से कविता की शक्ल में ढाला है उसकी कुँवर जी सराहना करते हैं। साथ ही रघुवीर सहाय की भाषा और वाक्य-विन्यास को महत्त्व देते हुए उसपर गंभीर चिंतन की आवश्यकता महसूस करते हैं।

**अज्ञेय**

कुँवर जी की प्रारंभिक रचनाओं से हिंदी जगत को अवगत कराने का श्रेय सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय को जाता है। गौरतलब है कि कुँवर जी 'तीसरा सप्तक' के कवियों में शामिल रहे हैं। कुछ मुद्दों पर कुँवर नारायण और अज्ञेय में वैचारिक मतभेद रहा है परन्तु इस रिश्ते की आत्मीयता, मतभेदों से कभी प्रभावित नहीं हुई। 'नया प्रतीक' का संपादन करते हुए

जब कुँवर जी असहज महसूस कर रहे थे और उन्होंने इसी वजह से इस दायित्व से अपना नाम वापस ले लिया था। उस वक्त भी अज्ञेय जी निराश ज़रूर हुए परन्तु उन्होंने कुँवर जी की मनोदशा को समझा। कुँवर जी उस घटना को याद करते हुए लिखते हैं-"शायद हमारे बीच मधुर संबंधों के बने रहने का एक बड़ा कारण यही था कि मैंने अपने मन की बात हमेशा स्पष्ट कहना पसंद किया, कूटनीति का आश्रय नहीं लिया। मुझसे अधिक इसका श्रेय अज्ञेय की उस आत्म-संस्कृति को जाता है, जिसमें दूसरे की स्वतंत्रता के प्रति उदार जगह थी।"[4] अज्ञेय की कविताओं में प्रयुक्त हुए शब्दों को कुँवर जी बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। अज्ञेय की कविताओं में निश्चित भावों का बोध कराने वाले ये शब्द कई बार प्रतीक के रूप में कविताओं में प्रयुक्त होते हैं। अज्ञेय के काव्य में व्यंजित शब्द-संकेतों के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कुँवर जी लिखते हैं- "विषय की दृष्टि से अज्ञेय का काव्य कुछ परिचित मानसिक अवस्थाओं को व्यक्त करने वाले शब्द से संकेतित होता है।"[5]

अज्ञेय का एक कवि के रूप में प्रभाव क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है। परन्तु कभी भी वह प्रभाव कुँवर जी पर या सप्तक के अन्य कवियों पर यांत्रिक रूप से नहीं पड़ा, यह प्रभाव सांकेतिक रहा इसलिए सभी कवियों को अपने-अपने अनुसार विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। जब कुँवर नारायण लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. कर रहे थे तब 'हरी घास पर क्षण भर' से उनका परिचय हुआ। आगे चलकर अज्ञेय का उन्हें निकट सान्निध्य प्राप्त हुआ। परन्तु कभी भी कुँवर जी की लेखनी को अज्ञेय ने अपने हिसाब से ढालना नहीं चाहा। अज्ञेय के संपादकत्व में प्रकाशित होने वाले कवियों का यह सौभाग्य रहा कि उन्हें अपने लेखन में वैचारिक स्वतंत्रता के लिए कभी भी समझौता नहीं करना पड़ा। कुँवर जी इस विषय में लिखते हैं- "इसलिए शायद हमारी पीढ़ी पर भी उनका ख़ुद का असर कुछ इस तरह का रहा कि हर कवि अपनी तरह विकसित हो सका, क्योंकि अज्ञेय ने मौलिक लेखन की प्रमुख शर्त को एक लेखक

की बौद्धिक आज़ादी से और काव्य-रचना की बुनियादी ज़रूरतों से जोड़ा। वैचारिक आग्रहों की अपेक्षा वैचारिक स्वतंत्रता को अधिक महत्त्व दिया।"[6]

**विजयदेव नारायण साही**

हिंदी साहित्य के इतिहास में कई कवि, लेखक ऐसे हुए हैं जिनका समय रहते सही मूल्यांकन नहीं हो सका। कई आज भी उपेक्षित हैं। अगर रामविलास शर्मा और जानकीवल्लभ शास्त्री ने निराला पर कलम न चलायी होती तो वे भी आज इसी वर्ग में शामिल होते। विजयदेव नारायण साही उन संभावनाशील कवियों में से हैं, जिनपर जितनी चर्चा होनी चाहिए उतनी नहीं हुई है। कुँवर नारायण जब अपनी पुस्तक 'आज और आज से पहले' में विजयदेव नारायण साही को याद करते हैं तो वहाँ भी इस कसक को महसूसा जा सकता है। कुँवर जी लिखते हैं कि "विजयदेव नारायण साही हमारे समय के उन प्रमुख हिंदी साहित्यकारों में रहे हैं जिनका गंभीर मूल्यांकन लगभग उपेक्षित रहा है।"[7]

विचार-गोष्ठियों में अपनी बात को साही जी जिस रूप में रखते थे, भाषा और विचार को बरतने का उनका वह अंदाज़ कुँवर नारायण को आकर्षित करता रहा है। विजयदेव नारायण साही के साथ हुए बहसों को जब कुँवर जी याद करते हैं तो आज भी उनकी कमी उन्हें महसूस होती है। साही जी बहस के दौरान ऐसे कई मसलों को उठाते थे जो अन्य सहभागियों को नयी-नयी दिशाओं में सोचने का अवसर देते थे। उनके साथ हुई बहसों ने कुँवर जी के लिए विमर्श के इतने आयाम खोल दिये जो जीवनपर्यंत ख़त्म नहीं हुए। विजयदेव नारायण साही की बहसों में निहित निरंतरता को रेखांकित करते हुए कुँवर जी लिखते हैं- "कम से कम मेरे लिए, हमेशा की तरह, आज भी वह जारी है और यह उनके व्यक्तित्व का एक ऐसा जानदार हिस्सा था जिसे शायद उनका कोई भी समकालीन भुला नहीं सकता।"[8] वैचारिक-गोष्ठियों में साही जी की

सहभागिता उस विरासत को आगे बढ़ाता जिसमें "साहित्य एक बहुत ही स्वस्थ अर्थ में लिखित से अधिक मौखिक परंपरा का विस्तार और परिष्कार था।"[9]

साही जी के राजनीतिक विचार प्रारंभ में आचार्य नरेन्द्रदेव से प्रभावित रहे हैं। ध्यातव्य है कि नरेन्द्र देव के सान्निध्य का असर कुँवर नारायण के व्यक्तित्व पर भी रहा है। इस बात को कुँवर जी ने अपने कई साक्षात्कारों में निःसंकोच भाव से स्वीकारा है। वैज्ञानिक समाजवाद में आस्था रखने वाले नरेन्द्रदेव मार्क्सवादी थे बावजूद इसके सोवियत संघ, स्तालिन, तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी समाजवाद के जिस संकीर्णतावादी रूप का अनुसरण कर रही थी नरेन्द्रदेव के समाजवाद की अवधारणा उससे भिन्न है। नरेन्द्रदेव ने अपने बुनियादी उसूलों से कभी समझौता नहीं किया। उनका समाजवाद सृजनात्मक था। बाद के वर्षों में विजयदेव नारायण साही पर डॉ. लोहिया का प्रभाव भी देखने को मिलता है। डॉ. लोहिया की आस्था गाँधीवादी समाजवाद में थी और वे मार्क्सवाद के विरोधी थे। ध्यातव्य है कि गाँधीवाद जहाँ नैतिकता से घनिष्ठ रूप में जुड़ा है, वहीं मार्क्सवाद वर्ग-संघर्ष से जुड़ा है। यह भी अजीब विडंबना है कि बाद के वर्षों में जिस गाँधीवाद की तरफ़ साही जी झुकते नज़र आते हैं, अपने लेखन के प्रारंभिक दिनों में वे उसके प्रबल विरोधी रहे हैं। इस विरोधी तेवर को 'तीसरा सप्तक' के उनके वक्तव्य में भी देखा जा सकता है- "मुझसे पहले की पीढ़ी में जो अक्लमंद थे, वे गूँगे थे। जो वाचाल थे, वे अक्लमंद नहीं थे। अंग्रेज़ी ने अक्लमंद बनाया तो गूँगा करके छोड़ा। गाँधी ने आवाज़ तो दी लेकिन अक्ल बन्धक रखवा ली। बड़ा क्रोध आता है। यह मेरा दुर्भाग्य है।"[10]

कुँवर नारायण साही जी की इस साफ़बयानी की तारीफ़ करते हैं क्योंकि इस साफ़बयानी को अर्जित करने के लिए निडर और ईमानदार होना पड़ता है। वैचारिक बहसों में भी साही जी अपना पक्ष रखने से नहीं हिचकते थे चाहे सभा का मत उनके विपरीत ही क्यों न हो। इतिहास के विरुद्ध जाने का साहस भी साही जी में था, यह साहस उन्हें विशिष्ट बनाता है-

“तुम हमारा ज़िक्र इतिहासों में

नहीं पाओगे

और न उस कराह का

जो तुमने आज रात सुनी

क्योंकि हमने अपने को

इतिहास के विरुद्ध दे दिया है :

लेकिन जहाँ तुम्हें इतिहासों में

छूटी हुई जगहें दिखें

और दबी हुई चीख का एहसास हो

समझना हम वहाँ मौजूद थे।”[11]

कुँवर नारायण और विजयदेव नारायण साही की इतिहास और कविता को लेकर बराबर बात होती थी। ध्यातव्य है कि कुँवर नारायण जब अपनी कविताओं के माध्यम से इतिहास की गलियों में प्रवेश करते हैं तो उनका उद्देश्य घटना-चित्रण से ज़्यादा उन जीवन अनुभवों को अभिव्यक्त करना होता है जिसके सूत्र आज भी हमारे समय में उपस्थित हैं। विजयदेव नारायण साही भी इतिहास की घटना से ज़्यादा महत्त्व ऐतिहासिक अनुभव को देते हैं। बकौल कुँवर नारायण- “इतिहास और कविता को लेकर साही जी से अक्सर बात होती थी। उनकी काव्यभाषा एक ख़ास माने में इतिहास-सतर्क भाषा है। इतिहास की किसी ख़ास घटना, पात्र या

जगह को वे केंद्र में नहीं रखते : ऐतिहासिक अनुभवों की अनेक अनुगूँजों को कुछ ख़ास शब्दों और मुहावरों द्वारा झंकारते हैं।"[12]

**शमशेर**

शमशेर की कविताओं के पुनर्पाठ पर कुँवर नारायण जोर देते हैं। वे इन कविताओं में निहित विस्तृत जीवनबोध और रचनात्मक सजगता के कायल हैं। भाषा और कविता के संबंधों को शमशेर ने अपनी कविता के माध्यम से अत्यंत सजगता से व्यक्त किया है। जहाँ एक ओर इनकी कविताओं में हमें उर्दू शायरी और छायावादी काव्य-परम्पराओं की झलक मिलती है वहीं दूसरी ओर अपनी भाषा को समकालीन अनुभवों से जोड़कर शमशेर ने उसे विस्तार दिया है। कुँवर नारायण इनके विषय में लिखते हैं कि "शमशेर को पढ़ना केवल उनकी कविताओं के अर्थ ग्रहण करना नहीं है, रचनात्मकता के अर्थ को भी अनुभव करना है। स्थितियाँ, बातें या प्रभाव उनकी भाषा से उत्पन्न होते हैं, उनमें अलग से रखे हुए नहीं लगते-इसलिए अक्सर उनकी कविताओं के निष्कर्ष नहीं, उन निष्कर्षों तक ले जाने वाली भाषा ज़्यादा बड़ा काव्यानुभव होती है।"[13]

शमशेर ने कविता के शिल्प-पक्ष को कभी अनदेखा नहीं किया। मार्क्सवाद से वैचारिक स्तर पर जुड़े होने और प्रगतिशील चेतना के होने के बावजूद कविता के शिल्प के मामले में वे लगातार प्रयोगशील बने रहे। इनकी कविता की भाषाई जमीन बहुत विस्तृत है तथा इसका फैलाव जीवन के विविध क्षेत्रों में है। इन्हें हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों भाषाओं के प्रयोग में महारत हासिल थी। इनकी कविताओं को पढ़ते हुए इस असर को महसूसा जा सकता है। कुँवर नारायण जब शमशेर को याद करते हैं तो उनकी कविता पर पड़े उर्दू शायरी के प्रभाव का ज़िक्र ज़रूर करते हैं। बकौल कुँवर नारायण "शमशेर की कविता को उर्दू शायरी के प्रभाव ने एक

अलग आयाम दिया है।"[14] इनकी प्रणय संबंधी कविताओं में फ़ारसी शब्दों के प्रयोग एवं उर्दू-शैली के प्रति इनके झुकाव को देखा जा सकता है। शमशेर की कविताओं में जो रचनात्मक सौन्दर्य देखने को मिलता है उसे उनकी कविता के 'कथ्य' से अलगाया नहीं जा सकता। अगर कोई आलोचक सामाजिक प्रतिबद्धताओं तक सीमित रखकर शमशेर की कविता का मूल्यांकन करता है तो यह उनकी कविताओं की अधूरी समीक्षा होगी। कुँवर नारायण शमशेर की रचना-प्रक्रिया और भाषा पर विस्तार से अध्ययन की आवश्यकता को महसूस करते हैं। चूँकि शमशेर के अध्ययन का दायरा बहुत विस्तृत है इसलिए उनकी कविताओं पर उर्दू-शायरी के अलावा अन्य भाषाओं के कई कवियों, चित्रकारों एवं संगीतकारों का प्रभाव रहा है। और, इस प्रभाव को शमशेर ने कभी नकारा भी नहीं है। निराला, ग़ालिब, अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि के प्रति उनका आत्मीय लगाव जगजाहिर है। कुँवर नारायण जब शमशेर की रचना-प्रक्रिया पर विचार करते हैं तो उन्हें किसी वाद या विचारधारा से जोड़कर देखने की जगह सम्पूर्णता में समझने की कोशिश करते हैं- "शमशेर अपनी रचनात्मक विशिष्टता में अपनी सही पहचान बनाते हैं : भारतीयता या जातीयता मात्र में नहीं- उसी तरह जैसे पिकासो की कला का मतलब केवल स्पेन या उसका स्पेनियर्ड होना उतना नहीं जितना योरोप और अमरीका से लेकर अफ्रीका तक उनका किसी भी कलारूप के प्रति संवेदनशील हो सकना था।"[15] शमशेर की कविता को सही-सही व्याख्यायित करने के लिए यह आवश्यक है कि उनके जीवन-बोध एवं विश्व-दृष्टि को ठीक-ठीक समझा जाए। शमशेर के राजनीतिक विचारों एवं साहित्यिक मान्यताओं को समझे बगैर उनकी कविता को आत्मसात नहीं किया जा सकता। कुँवर नारायण जब शमशेर की कविताओं और उन कविताओं की रचना-प्रक्रिया पर अपनी बात रखते हैं तो उसे पढ़ते हुए हम कुँवर नारायण की जीवन-दृष्टि को भी समझ सकते हैं। एक आलोचक के रूप में कुँवर जी को कवि की कौन-सी विशिष्टता आकर्षित करती है यह कुँवर नारायण के मिजाज़ का पता देती है। उदाहरण के लिए

जब कुँवर नारायण यह लिखते हैं कि “अज्ञेय, शमशेर या मुक्तिबोध जैसे किसी भी बड़े कवि पर विचार करते समय यह समझ सर्वोपरि रहनी चाहिए कि वे प्रमुखतः कवि/साहित्यकार हैं-किसी ख़ास अन्य विषय के प्रवक्ता नहीं।”[16] तो ऐसा लिखते हुए कुँवर जी वह लकीर खींच रहे होते हैं जो कवि/साहित्यकार को अन्य विषयों के प्रवक्ताओं से अलग करती है। एक अर्थशास्त्री या एक राजनीतिज्ञ समाज या समाज में रहने वाले मनुष्य के विषय में जिस तरह से सोचता है एक कवि उस रूप से नहीं सोचता। इसलिए जब शमशेर के राजनीतिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में भी हम उनकी कविता को देखें तो बतौर पाठक हमारी चेतना में कवि और राजनीतिक प्रवक्ता के बीच का फ़र्क होना चाहिए तभी हम इन कविताओं में निहित संवेदना एवं विश्व-दृष्टि को आत्मसात कर पाएँगे।

**निर्मल वर्मा**

अपने संस्मरण में कुँवर नारायण निर्मल वर्मा को जिस तरह से याद करते हैं साहित्य के क्षेत्र में वह दोनों के सहयात्री होने का प्रमाण है। निर्मल वर्मा के विषय में जब कुँवर जी यह लिखते हैं कि “उनकी बुनियादी संवेदना काव्यात्मक है : इससे कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता कि उन्होंने कविता के बजाय कहानी, उपन्यास और निबन्ध-विधा को अपना माध्यम चुना। हम दोनों के बीच उनकी यह काव्य-संवेदना शायद एक ज़्यादा बड़ी समानुभूति की ज़मीन रही”[17] तो यह कहीं से काव्य-दृष्टि को एक कहानीकार के ऊपर थोपना नहीं है बल्कि यह उपन्यास और कहानी को बृहत्तर परिप्रेक्ष्यों में ले जाकर देखना है। समाज तथा राज्यसत्ता द्वारा निर्धारित लौकिक मर्यादाओं से परे जाकर जब कोई रचनाकार जीवन के विविध रंगों को अभिव्यक्ति देता है तो उसकी अभिव्यक्ति किसी एक विधा तक सीमित नहीं होती बल्कि वह एक विधा से दूसरी विधा में यात्रा करती है। ऐसी यात्राओं से साहित्य एवं कलाएँ समृद्ध हुआ करती हैं।

निर्मल वर्मा जब किसी कलाकृति या साहित्य की किसी विधा पर विचार करते हैं तो आज़ादी को विशेष महत्त्व देते हैं। वे अपनी कहानियों में भी मनुष्य की आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों से खुला संवाद करते हैं। और, इस संवाद के फलस्वरूप जो अनुभव हाथ लगता है वह जीवन के लिए किसी भी भौतिक सत्य से ज़्यादा महत्वपूर्ण होता है। कलात्मक अनुभव के विषय में निर्मल वर्मा जिस तरह से विचार करते हैं वह दृष्टव्य है- "बाकि सब वस्तुएँ मनोरंजन करने के बाद अपनी उपयोगिता खो देती हैं...क्योंकि यही उनका प्रयोजन है, जबकि एक कलाकृति मनोरंजन करने की प्रक्रिया में उस 'मन' के बारे में भी जिज्ञासा जगाती है, जिसे वह 'रंजित' करती है...वह सिर्फ़ जिज्ञासा जगाती है, उसका उत्तर मिलता है, तो सिर्फ़ उसके कलात्मक अनुभव में उत्तर देना उसका प्रयोजन नहीं है, जैसे कि हमें मनोरंजित करना उसका लक्ष्य नहीं है।"[18]

कलात्मक अनुभव के विषय में उपर्युक्त विचार निर्मल वर्मा और कुँवर नारायण की वैचारिक समानता को भी दिखाता है। कुँवर नारायण ने भी हमेशा कलाकृति को मनोरंजन से ज़्यादा बड़े परिप्रेक्ष्य में देखने का यत्न किया है। ध्यातव्य है कि जीवन-अनुभव का क्षेत्र बहुत व्यापक है। मनोरंजन उसका एक हिस्सा हो सकता है पर वह मनोरंजन तक सीमित नहीं हो सकता। निर्मल वर्मा के लेखन में जो खुलापन है वह पाठक के जीवन-अनुभव को विस्तार देता है। कुँवर नारायण जब उन्हें याद करते हैं तो सिर्फ़ कहानीकार या उपन्यासकार के रूप में याद नहीं करते बल्कि एक ऐसे आत्मीय के रूप में याद करते हैं जिससे "ज़िन्दगी के भरेपन"[19] का एहसास होता है।

उपर्युक्त साहित्यकारों के अतिरिक्त अन्य कई समकालीन साहित्यकारों के रचना-कर्म को भी कुँवर नारायण ने व्याख्यायित एवं विश्लेषित किया है। इस विश्लेषण के क्रम में कई बार अपने समकालीनों की वे आलोचना भी करते हैं परन्तु इस आलोचना में भी किसी क़िस्म का

दुराग्रह नहीं है। निश्चित तौर पर यहाँ स्पष्टवादिता है परन्तु इन सबका उद्देश्य साहित्य को बृहत्तर आशयों से जोड़े रखना है। जब कुँवर नारायण किसी कवि पर विचार कर रहे होते हैं तब उस कवि मात्र पर सीमित नहीं रहते बल्कि उसके बहाने अगल-बगल भी झाँक लेते हैं। उदाहरणस्वरूप नामवर सिंह पर विचार करते हुए वे मार्क्सवाद और साहित्य से उसके संबंधों पर भी विचार करते चलते हैं। इस क्रम में जो दिलचस्प स्थापनाएँ कुँवर जी प्रस्तुत करते हैं वह साहित्य से उनकी वाबस्तगी को दर्शाता है। साहित्यिक विवेक को वे हर कीमत पर ज़िंदा रखना चाहते हैं। कुँवर जी जानते हैं कि कला और संस्कृति की दुनिया राजनीति की दुनिया से ज़्यादा व्यापक है। ख़ासकर ऐसे वक्त में जब राजनीति में 'नैतिकता' जैसे शब्द के मायने खो गये हैं। राजनीति में हार और जीत की जो परिभाषा निर्मित हो गयी है, साहित्य में जय-पराजय की परिभाषा उससे भिन्न है। कुँवर जी दुनिया को साहित्य और भाषा की तरफ़ से देखने के आकांक्षी हैं वे लड़ाई के उस तरीक़े को ईज़ाद करने के पक्षधर हैं जो विस्मृति की ओर अग्रसर है- "हम लड़ाई के दूसरे अर्थ को भूल चुके हैं, जो ख़ुद से लड़ी जाती है, जो पहले ख़ुद पर हार या जीत का मामला है। उसकी फतेहपुरी दूसरी है, उसका अकबर दूसरा है। उसके लिए आज सूर या तुलसी या कबीर की तरह अपना घर फूंकना ज़रूरी नहीं है, लेकिन कहीं अपने अंदर वह साहस, नैतिक बल, आत्मसम्मान ज़रूरी है, जो एक कबीर के साहित्य को औरों से अलग करता है।"[20]

अपने समकालीन रचनाकारों और उनकी पुस्तकों पर विचार करते हुए कुँवर नारायण की एक मंशा जो बार-बार प्रकट होती है उसे उन्हीं के शब्दों में कहूँ तो वह है "दुनिया को बड़ा रखने की आकांक्षा"[21] विचारों की तानाशाही को नकारने तथा विचारों के लोकतंत्र में विश्वास रखने वाले कुँवर नारायण का चिंतन उनके समकालीनों को नये ढंग से समझने और पढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

**संदर्भ ग्रंथ:**


1. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-79
2. (सं) अनुराग वत्स, रुख़, पृष्ठ-113
3. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-214
4. (सं)अनुराग वत्स, रुख़, पृष्ठ-80-81
5. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-171
6. (सं)अनुराग वत्स, रुख़, पृष्ठ-82
7. कुँवर नारायण,आज और आज से पहले, पृष्ठ-190
8. वही, पृष्ठ-190
9. वही, पृष्ठ-190
10. (सं) अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृष्ठ-184
11. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-193
12. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-193
13. वही, पृष्ठ-184
14. वही, पृष्ठ-185
15. वही,पृष्ठ- 187
16. रुख़, पृष्ठ-15
17. वही, पृष्ठ-87
18. निर्मल वर्मा, शताब्दी के ढलते वर्षों में, पृष्ठ-22
19. (सं)अनुराग वत्स, रुख़, पृष्ठ-86
20. वही, पृष्ठ-98
21. कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-92

## 2.3 नयी कविता और कुँवर नारायण:

नयी कविता आधुनिक हिन्दी कविता की एक महत्वपूर्ण काव्यधारा है। नयी कविता के विषय में विद्वानों के बीच मतान्तर है। कुछ विद्वान् इसे प्रयोगवाद से संबंधित काव्यधारा मानते हैं तो कुछ विद्वानों ने इसे प्रयोगवाद से सर्वथा भिन्न माना है। यह भी विमर्श का विषय रहा है कि नयी कविता किन अर्थों में और कितनी नयी है? नयी कविता के विषय में बच्चन सिंह लिखते हैं-"'छायावाद' और 'प्रगतिवाद' की तरह 'नयी कविता' की जन्म-कुंडली का प्रमाणिक इतिहास नहीं ज्ञात है। संभवतः 1952 में 'आकाशवाणी' पटना की एक भेंटवार्ता में अज्ञेय ने 'नयी कविता' का प्रयोग किया।सन् 1954 में तो इलाहाबाद से 'नयी कविता' पत्रिका का प्रकाशन ही शुरू हो गया था।"[1]

लक्ष्मीकांत समेत अधिकतर विद्वानों ने इसका प्रारम्भ 1951 से माना है क्योंकि इसी वर्ष अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ। इस सप्तक की कविताएँ प्रयोगवाद की रूपवादी कविताओं से भिन्न हैं तथा इसमें रूप और कथ्य का सामंजस्य देखने को मिलता है। नयी कविता पर मुख्यतः अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव देखने को मिलता है, कहीं-कहीं मार्क्सवाद का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। जहाँ अज्ञेय की कविताओं पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव है वहीं मुक्तिबोध की कविताएँ मार्क्सवाद से प्रभावित हैं। असल में नयी कविता मानवतावादी दृष्टि को लेकर आगे बढ़ी है। एक ऐसी जीवन-दृष्टि जो प्राचीन और रूढ़ हो चुके जीवन-मूल्यों को नकारती है। भाव और भाषा दोनों ही स्तरों पर नवीनता के आग्रही ये कवि वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ आगे बढ़े हैं। नयी कविता को विभिन्न विद्वानों ने अपने अनुसार परिभाषित किया है-

- लक्ष्मीकान्त वर्माके अनुसार "नयी कविता आधुनिक हिन्दी काव्य धारा का ही एक स्रोत है, जिसकी पृष्ठभूमि में विशाल बौद्धिक, सांस्कृतिक और सामाजिक अंतर्द्वंद्वों, संघर्षों एवं चेतना शक्तियों का योग रहा है।"[2]
- गजानन माधव मुक्तिबोध के अनुसार "नयी कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की प्रतिक्रिया है। नयी कविता का स्वर एक नहीं, विविध है।"[3]
- डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार "नयी कविता प्रथम बार समस्त जीवन को व्यक्ति या समाज इस प्रकार के तंग विभाजनों के आधार पर न मानकर मूल्यों के सापेक्ष स्थिति में व्यक्ति और समाज दोनों को मापने का प्रयास कर रही है।"[4]
- डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार – "नयी कविता मूलतः मानववादी है, क्योंकि मानव जीवन को सार्थकता न प्रदान करने वाले तत्वों पर व्यंग्य प्रहार करना वह अपना मनुष्य कर्तव्य समझती है। मनुष्य की सहज अनुभूतियों के प्रति उसका ग्रहणभाव है, तथा युग की जटिलताओं के प्रति दायित्वभाव।"[5]
- अज्ञेय के अनुसार- "नयी कविता सबसे पहले एक नयी मनःस्थिति का प्रतिबिम्ब है- एक नये मूड का एक नये रागात्मक सम्बन्ध का।"[6]
- डॉ. इन्द्रनाथ मदान के अनुसार - "नयी कविता का उद्देश्य जीवन को नवीन परिस्थिति, उसके नवीन स्तरों एवं धरातलों को व्यक्ति सत्य की दृष्टि से अभिव्यक्ति देना है।"[7]
- शम्भूनाथ सिंह के अनुसार – "एक बात और भी है जो नयी कविता नाम को सार्थक बनाती है, वह है नयी कविता की नित्य नवीनीकरण की प्रवृत्ति।"[8]

नयी कविता में हम नये मनुष्य को प्रतिष्ठित होते हुए पाते हैं। सवाल उठता है कौन है यह नया मनुष्य ? दरअसल यह नया मनुष्य और कोई नहीं सामान्य मनुष्य है। वह मनुष्य जिसे

साहित्य के केंद्र में होना चाहिए था, जो अपने आत्मसम्मान, जीत-हार को समेटकर आगे बढ़ता है। नये कवियों ने इस 'लघुमानव' की अनुभूतियों को अपने काव्य में स्थान दिया है। लघुमानव के विषय में विजयदेवनारायण साही की पँक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"तुम हमारा ज़िक्र इतिहासों में/ नहीं पाओगे

और न उसका कराहना/ जो तुमने उस रात सुनी।"[9]

नयी कविता मध्यवर्गीय व्यक्ति के सुख-दुःख, भूख-प्यास की सच्ची अभिव्यक्ति है। कई मायनों में व्यक्ति की निजता, उसकी स्वतंत्रता का उद्घोष है नयी कविता। मुक्तिबोध 'लघुमानव' को अपने काव्य में प्रतिष्ठित करते हुए लिखते हैं-

"इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए,

पूरी दुनिया को साफ करने के लिए

मेहतर चाहिए।"[10]

ध्यातव्य है कि विराट जीवन नयी कविता के कवियों के लिए उतना मायने नहीं रखता जितना भोगा हुआ एक क्षण रखता है। अतीत और भविष्य नये कवियों को उतना नहीं लुभाता जितना वर्तमान का क्षण लुभाता है। जीवन के प्रत्येक क्षण को भोग लेने की प्रवृत्ति हम नयी कविता में देखते हैं। जीवन का प्रत्येक अनुभूत सत्य, चाहे वह कितना ही उपेक्षणीय क्यों न हो, नयी कविता में हम उसे प्रतिष्ठित होते हुए पाते हैं। चाहे नरेश मेहता की काव्य-रचना 'संशय की एक रात' हो, धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' हो या मुक्तिबोध का 'अँधेरे में', मनुष्य की लघुता में छिपी संभावनाओं को हम यहाँ अभिव्यक्त होते हुए पाते हैं। इन संभावनाओं तक पहुँचने की पहली शर्त है उस लघुमानव की मनःस्थिति की अभिव्यक्ति। वह व्यक्ति जो भयाक्रांत है, जो

संशयग्रस्त है, आजादी से जिसका मोहभंग हो चुका है, जो कई स्तरों पर अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहा है उसके लिए स्वयं को अभिव्यक्त करना निश्चय ही एक दुरूह कार्य है। नयी कविता पर विचार करते हुए मुक्तिबोध याद आते हैं और याद आती हैं उनकी पँक्तियाँ-

"खोजता हूँ पठार...पहाड़...समुंदर

जहाँ मिल सके मुझे

मेरी खोई हुई

परम अभिव्यक्ति अनिवार

आत्म-संभवा !"[11]

लघुमानव की मनोदशा पर तत्कालीन परिस्थितियों का गहरा प्रभाव है। आज़ादी के बाद लोकतंत्र की स्थापना तो हुई परन्तु लोकतंत्र सच्चे मायनों में फलीभूत नहीं हुआ। मनुष्य की गरिमा का कोई मोल न रहा। रोजगार की तलाश में लोग शहरों की ओर गये, रोजगार कितनी मिली, न मिली इससे बड़ी घटना यह हुई की गाँव से दूर जाकर वे अपनी जड़ों से कट गये। व्यक्ति रोजगार प्राप्त करने निकला था और वह अकेला हो गया। यंत्रीकरण के बढ़ते प्रभाव में यंत्र ने आदमी को रिप्लेस करना प्रारंभ कर दिया। विश्वयुद्धों की त्रासदी ने मानवीय गरिमा को चोट पहुँचायी। अपनी अस्मिता से लगातार जूझते व्यक्ति की अभिव्यक्ति नयी कविता में कुछ इस तरह होती है कि उसके माध्यम से मनुष्य के लिए कुछ सार्थक ढूंढा जा सके। धर्मवीर भारती जैसे कवि नयी कविता का ध्वज अपने हाथों में उठाते हैं और लघुमानव के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखते हैं-

"मैं रथ का टूटा हुआ पहिया

लेकिन मुझे फेंको मत,

क्योंकि इतिहासों की सामूहिक गति

सहसा झूठी पड़ जाने पर

क्या जाने

सच्चाई टूटे पहियों का आश्रय ले"[12]

'अंधायुग' एक पौराणिक आख्यान पर आधारित काव्य-ग्रन्थ है परन्तु कवि ने इसमें अपने समय के अवसाद, कुण्ठा तथा अन्य विसंगतियों को अंकित किया है। युयुत्सु का चरित्र समकालीन द्विधाग्रस्त मानव के मन को व्यक्त करता है। नयी कविता का कवि जितनी सहानुभूति कृष्ण से रखता है उतनी ही गांधारी, युयुत्सु और अश्वत्थामा के लिए भी। 'अंधा युग' को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि धर्मवीर भारती ने इस काव्य-नाटक को पुराण और प्रतीक के बीच विकसित किया है। कुँवर नारायण के 'आत्मजयी' में भी हम यही स्थिति पाते हैं। कथानक को आगे बढाने के लिए कुँवर नारायण ने उपनिषद की कथा का प्रयोग किया है लेकिन प्रतीकों के माध्यम से मूल्यों का प्रसार करते हैं। आधुनिक भाव-बोध से युक्त नयी कविता के प्रायः सभी कवियों में तीव्रतम संवेदना-शक्ति के दर्शन होते हैं। इस तीव्रतम संवेदना-शक्ति की वजह से ही साधारण मनुष्य की वेदना को इन कवियों ने महसूसा और उसे अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया। नयी कविता की अन्तःप्रकृति को समझने के लिए हमें उस संवेदनात्मक धरातल की पड़ताल करनी होगी जिसने इन कवियों को काव्य-लेखन के लिए प्रेरित किया। यथार्थ हमारी उन घटनाओं और परिस्थितियों तक सीमित नहीं होता है जिसे हम देखते हैं बल्कि उन परिस्थितियों और घटनाओं के कारण व्यक्ति की मनःस्थिति पर जो प्रभाव पड़ता है वह भी उस

समय का यथार्थ है। नयी कविता के कवियों ने मनःस्थिति पर पड़े इस संवेदनात्मक प्रभाव को अपनी कविता में स्थान दिया है।

नयी कविता की एक और प्रधान विशेषता है प्राचीन काव्य-भाषा का त्याग तथा उसके स्थान पर नवीन काव्य-भाषा का प्रयोग। यह नयी भाषा दरअसल सहज भाषा है जिसका प्रयोग हम दैनिक जीवन के सामान्य बातचीत में करते हैं। छंदबद्ध और अलंकार प्रधान काव्यभाषा से इतर ऐसे शब्दों का प्रयोग हम यहाँ देखते हैं।

नयी कविता से संबंधित विविध पहलुओं पर मुक्तिबोध ने अपनी पुस्तक 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' में विस्तार से चर्चा की है। साधारण वर्ग के मनुष्य के बारे में मुक्तिबोध लिखते हैं कि "मेरा ख़याल है कि उसमें अनेक निचाइयों के बावजूद, ऊँचाइयाँ हैं।"[13]आगे वे लिखते हैं- "साधारण मनुष्य सल्तनत नहीं चाहता। मनुष्य की स्वाभाविक गरिमा के अनुरोधों के अनुसार वह जीवन चाहता है, और उस जीवन की आवश्यकताएँ पूरी हो जाने की स्थिति चाहता है।"[14] नयी कविता साधारण मनुष्य की खोयी हुई गरिमा को प्राप्त करने का प्रयास है।

## ➢ तीसरा सप्तक और कुँवर नारायण

कुँवर जी अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' के प्रमुख कवियों में शामिल हैं। कुँवर नारायण की कविताओं का संसार इतना व्यापक और जटिल है कि उसे किसी एक 'काव्य-आन्दोलन' या 'वाद' के भीतर रखकर विचार करना अन्याय होगा। लेकिन जिन विशिष्टताओं के आधार पर किसी कविता को नयी कविता कहा जा सकता है वे विशिष्टताएँ कुँवर जी की कई कविताओं में लक्षित होती हैं। चाहे 'तीसरा सप्तक' में संकलित उनकी कविताएँ हों या 'आत्मजयी' जैसा खंडकाव्य, नयी कविता की कई प्रवृत्तियाँ उनमें हमें देखने को मिलती हैं। यहाँ एक बात गौरतलब है कि 'तीसरा  सप्तक' में जिन सात कवियों की कविताएँ संकलित हैं

उनकी रचना-प्रक्रिया, शब्दों को बरतने का उनका अंदाज़ एक दूसरे से अलग है। अज्ञेय इस संदर्भ में लिखते हैं-

"'तीसरा सप्तक' के कवि भी एक ही मंज़िल तक पहुँचे हों, या एक ही दिशा में चले हों, या अपनी अलग दिशा में भी एक-सी गति से चले हों, ऐसे नहीं कहा जा सकता।"[15]

नयी कविता के कवियों ने स्वतंत्र चिंतन को महत्त्व दिया। बौद्धिक स्वतंत्रता का यह परिणाम हुआ कि इन कवियों ने जीवन से संबंधित प्रश्नों को निडरता से अपनी कविताओं में उठाया। इन कविताओं में अन्वेषण का जो भाव देखने को मिलता है उसके मूल में वह जिज्ञासा है जो कवियों को सत्य के अनुसन्धान के लिए प्रेरित करती है। किसी भी काव्य-रूप या कथन की किसी भी शैली से इन कवियों ने परहेज़ नहीं किया है। ये कवि किसी सीमा में बँधने के बजाय सीधे जीवन से संपर्क करना चाहते हैं। इन कवियों ने अपनी रचना-प्रक्रिया के दौरान जो विविध प्रयोग किये हैं वह इनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिफलन है। नये कवियों के इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के संदर्भ में कुँवर नारायण ने 'तीसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में लिखा है- "वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मेरा अभिप्राय उस सहिष्णु और उदार मनोवृत्ति से है जो जीवन को किसी पूर्वाग्रह से पंगु करके नहीं देखती बल्कि उसके प्रति एक बहुमुखी सतर्कता बरतती है। कलाकार या वैज्ञानिक के लिए जीवन में कुछ भी अग्राह्य नहीं: उसका क्षेत्र किसी वाद या सिद्धान्त-विशेष का संकुचित दायरा न हो कर वह सम्पूर्ण मानव-परिस्थिति है जो उसके लिए एक अनिवार्य वातावरण बनाती है और जिसे उसका जिज्ञासु स्वाभाव बराबर सोचता-विचारता रहता है।"[16] जब नयी कविता का कवि मुक्त छंद में लिखने की वकालत करता है तो दरअसल वह छंद को नकार नहीं रहा होता है बल्कि छंद में लिखने की अनिवार्यता को नकार रहा होता है। कुँवर नारायण 'तीसरा सप्तक' के वक्तव्य में 'मुक्त छंद' पर उठ रहे सवालों का भी जवाब देते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि इस संग्रह में कवियों की सिर्फ़ कविताएँ संकलित नहीं हैं बल्कि

उनका 'परिचय' और 'वक्तव्य' भी शामिल है। और, ये 'वक्तव्य' इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनके माध्यम से कवि ने केवल काव्य-सिद्धांत नहीं बतलाए हैं बल्कि उन हमलों का भी रचनात्मक जवाब दिया है जो नयी कविता पर लगातार हो रहे थे। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि पूर्वाग्रह से मुक्त होकर लिखना जितना कठिन रहा है, पूर्वाग्रह मुक्त आलोचना भी उतनी ही कठिन रही है। 'नयी कविता' कथ्य और विचार के स्तर पर जिस तरह के नवीन प्रयोग कर रही थी शास्त्रीय आलोचकों के निशाने पर उसका आना स्वभाविक था। अज्ञेय ने जब यह देखा कि शास्त्रीय आलोचकों से नयी कविता को सहानुभूतिपूर्ण तो क्या पूर्वाग्रह-रहित अध्ययन भी न मिला तो उन्होंने नये कवियों से यह आग्रह किया कि "परिस्थिति की माँग यह है कि कविगण स्वयं एक-दूसरे के आलोचक बनकर सामने आवें।"[17] प्रत्येक कवि की कविता के पहले के वक्तव्य को इस आवश्यकता की देन के रूप में भी देखा जा सकता है। वजह जो भी हो नयी कविता के स्वरूप और कवियों की रचनाधर्मिता को समझने की दृष्टि से ये 'वक्तव्य' बहुत महत्वपूर्ण हैं।

'तीसरा सप्तक' के वक्तव्य के आधार पर कुँवर नारायण के मंतव्यों को निम्न बिन्दुओं में रूपायित किया जा सकता है-

1. पूर्वाग्रहों की उपेक्षा
2. वाद के संकीर्ण घेरे से मुक्ति
3. वैज्ञानिक दृष्टिकोण
4. छंद की अकड़बन्दी को अस्वीकृत करना
5. वैचारिकता को महत्त्व
6. कविता की बनावट पर विशेष ध्यान
7. प्रयोग पर बल

कुँवर नारायण ने अपनी बातों को तर्क के साथ प्रस्तुत किया है। अपने वक्तव्य में कुँवर जी 'नयी कविता' को साहित्य का स्वाभाविक विकास बतलाते हैं और वादग्रस्त कविता को इस स्वाभाविक विकास में बाधा मानते हैं। वाद के सकीर्ण घेरे से कविता की मुक्ति के साथ ही वे काव्य के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की वकालत करते हैं। जब वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण की बात करते हैं तो उससे उनका आशय "उस बौद्धिक स्वतन्त्रता से है जो सदा जीवन के प्रति निडर और अन्वेषी प्रश्न उठाती रही है।"[18] जब हम कुँवर नारायण की कविताओं के परिप्रेक्ष्य में उनके इस कथन को देखते हैं तो उनकी कविताओं में निहित उस जीवनदृष्टि को साफ़-साफ़ देख सकते हैं जिसकी वजह से उन्होंने अपनी कविताओं में जीवन की सार्थकता से जुड़े विविध प्रश्नों को निडरतापूर्वक उठाया है। कुँवर जी की कविताओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोण तीन प्रकार से अभिव्यक्त हुआ है-(i)विचार पक्ष (ii) कविता का संगठन (iii) प्रयोग। कविता में विचार पक्ष प्रधान होने का यह अर्थ नहीं है कि उनकी कविता में बौद्धिक रुखाई है बल्कि यहाँ "यथार्थ के प्रति एक प्रौढ़ प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति"[19]देखने को मिलती है।

अपने वक्तव्य में विचार पक्ष के अंतर्गत कुँवर नारायण ने अस्तित्व की उन दो बुनियादी परिस्थितियों का ज़िक्र किया है जो उनकी कविता में देखने को मिलती हैं- "एक तो व्यक्ति और अज्ञात; तथा दूसरी व्यक्ति और उसका सामाजिक वातावरण।"[20] कुँवर जी की कविताओं का पाठक अस्तित्व संबंधी इन दोनों बुनियादों को महसूस कर सकता है। जीवन तथा उसकी सांस्कृतिक, नैतिक मान्यताओं का जो विवेचन हम इनकी कविताओं में पाते हैं, उसमें अस्तित्व संबंधी दोनों ही पक्षों को लक्षित किया जा सकता है।

कुँवर जी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का दूसरा प्रकार 'कविता का संगठन' है। एक कवि के रूप में वे कविता की विकासशील संभावनाओं को महत्त्व देते हैं तथा कविता के किसी पूर्व निर्मित आकार को अंतिम मानने से इंकार करते हैं। उनकी कविताओं में शब्द, भाव, बिम्ब, लय

आदि का जो सम्मिश्रण देखने को मिलता है वह कविता की बनावट संबंधी उनकी मान्यताओं पर मुहर लगाता है।

कुँवर जी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का तीसरा प्रकार 'प्रयोग' है। यहाँ 'प्रयोग' से किसी वाद विशेष का आशय नहीं लिया जाना चाहिए। अपनी कविताओं में प्रयोग के संदर्भ में कुँवर नारायण लिखते हैं- "मेरी कविताओं में प्रयोग का आधार मुख्यतः भाषा-शास्त्र और सौन्दर्य-शास्त्र संबंधी प्रश्न रहे हैं।"[21]कुँवर जी किसी नये विचार को पुराने छंद में कसने को कविता पर ज़्यादती बतलाते हैं। छंद के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी कुँवर जी उसपर नियंत्रण का विरोध करते हैं।

### ➢ नयी कविता का रूप और कथ्य तथा कुँवर नारायण

नयी कविता को आधार बनाकर कुँवर नारायण ने कुछ लेख भी लिखे हैं जो उनकी पुस्तक 'आज और आज से पहले' में संग्रहित हैं। कविता के परिचित, पारंपरिक रूपों के टूटने का श्रेय कुँवर जी बदलती हुई वैचारिक चेतना को देते हैं। नयी कविता में जो जटिल और प्रयोगात्मक शैली हम देखते हैं उसके पीछे कवि की मानसिक छटपटाहट है क्योंकि वह जिस समय में कविता रच रहा है उस समय व्यक्ति के मूल्यों में परिवर्तन की गति बहुत तीव्र है। यह आज़ादी के बाद का वह दौर है जब मनुष्य पूरी दुनिया पर काबू पाना चाह रहा है और उसमें निरंतर सफल भी हो रहा है परन्तु इस पूरी प्रक्रिया में उसने अपनी चेतना को इतना यांत्रिक बना लिया है कि स्वयं पर उसका वश नहीं रह पा रहा। वह बाहर की यात्रा में इतना मग्न है कि उसे अपनी आत्मा की ओर लौटने का अवकाश नहीं है। नयी कविता के कवि के सामने यह एक जटिल परिस्थिति है। भौतिक और आत्मिक मूल्यों के बीच का द्वंद्व नयी कविता में कभी आक्रोश के स्वर में सुनाई देता है तो कभी उसे हम अनास्था और उपेक्षा के रूप में अभिव्यक्त

होते हुए पाते हैं। नयी कविता की जमीन उस वक्त का समाज और सामाजिक दशा है, फ़िर चाहे उसके फॉर्म पर प्रतीकवादी कवियों का प्रभाव हो या बॉदलेयर जैसे फ्रेंच कवि का। संवेदनात्मक स्तर पर समाज से गहरे लगाव की वजह से लोगों के सुख-दुःख में नये कवियों की भागीदारी रही है। नयी कविता में जो हम राजनीतिक संदर्भों को उद्घाटित होते हुए देखते हैं वह भी इसलिए है क्योंकि नया कवि जब अपने परिवेश का चित्रण कर रहा होता है तो राजनीति उसमें स्वतः शामिल रहती है। ध्यातव्य है कि राजनीति को सामाजिक परिवेश से पृथक करके देखना सम्भव नहीं है।

कवि अपने लेख में नयी कविता की वकालत करते हुए नहीं दिखते हैं बल्कि तथ्यों के साथ उन कारणों की पड़ताल करते हैं जिसने नयी कविता के कथ्य और रूप को जन्म दिया। "'नयी कविता' : रूप और कथ्य'' शीर्षक से कुँवर जी का एक लेख है इसमें कवि कुछ बुनियादी सवाल उठाते हैं और उन सवालों के माध्यम से नयी कविता की ज़रूरत को समझने-समझाने की कोशिश करते हैं। नयी कविता के शिल्प-पक्ष पर विचार करते हुए कुँवर जी लिखते हैं-"मेरे लिए यह ज़रूरी बात है कि एक कविता अपने 'फॉर्म' द्वारा भी उतना ही कुछ-या उससे अधिक कुछ भी-कह सकती है जितना कि वह उस भाषाई 'अर्थ' द्वारा कहती है जिसे सामान्यतः एक कविता का कथ्य माना जाता है।"[22]नयी कविता के कवियों ने अपने जीवनानुभवों को ख़ास भाषाई रूप में अभिव्यक्त किया। भाषा के स्तर पर इन कवियों ने नवीन प्रयोग किये। इन प्रयोगों की वजह से इनकी आलोचनाएँ भी हुई। नामवर सिंह जैसे आलोचकों ने नयी कविता की भाषा को लेकर गंभीर सवाल खड़े किये हैं। हिंदी के अलावा दूसरी भाषा, ज्ञान-विज्ञान और ललित-कलाओं के शब्दों के कविता में प्रयोग की भी आलोचना हुई है। नये विचारों की अभिव्यक्ति पारंपरिक छंदबद्ध भाषा में संभव नहीं थी इसलिए इन कवियों ने मुक्त-

छंद को युग की आवश्यकता बतलाया। परन्तु इस मुक्त छंद के प्रयोग को लेकर भी नयी कविता को आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा।

नयी कविता की भाषा पर बात करते हुए नामवर सिंह लिखते हैं कि “मुक्त छन्दों के चलन ने कविता की भाषा को बिगाड़ने में काफी काम किया है। जन-गीत लिखने की शेखी में हल-जुते बैल के हाँकने की किसानी भाषा को भी ‘आँ-आँ-बां-बां-ताँ-ताँ’ के साथ कविताया गया है। यह कविता के साथ मजाक करना है।”[23]हालाँकि नयी कविता के कवियों ने अपनी सृजनात्मकता से ऐसी आलोचनाओं का जवाब भी दिया है। कुँवर जी ने भी मुक्त छंद के प्रयोग को युग और युगीन परिस्थितियों के माँग के रूप में स्वीकारा है तथा कविता के परिचित पारंपरिक रूप के टूटने के पीछे नये विचारों को वजह बताया है। उनका मानना रहा है कि कविता अपने ‘रूप’ द्वारा भी वह सबकुछ कह सकती है जितना वह अपने ‘भाषाई अर्थ’ द्वारा कहती है। नयी कविता के कवियों ने भाषा को इतनी शक्ति दी कि कई बार ‘भाषाई अर्थ’ से भी ज्यादा कविता अपने ‘रूप’ के द्वारा कह जाती है। नयी कविता के कवियों ने शब्द को कुछ नया देना चाहा। इस चाह ने नयी कविता के रूप को निर्मित किया। छंद के सवाल पर कुँवर जी लिखते हैं- “नयी कविता ने या आज की कविता ने, कभी भी छन्दों को अस्वीकार नहीं किया : केवल कविता पर उनकी तानाशाही, अकड़बन्दी को अस्वीकार किया और कविता को उसकी आत्मिक शक्ति से जोड़ने की कोशिश की, जो अलंकारों के नीचे दब-सी गई थी।”[24] कुँवर जी ने ‘नयी कविता’ को कभी ‘वाद’ के रूप में नहीं देखा। तत्कालीन समय की जटिलता और संश्लिष्टता को व्यक्त करने के लिए उन्हें एक ऐसी भाषा की ज़रूरत महसूस हुई जो तमाम शास्त्रीय बंधनों से मुक्त हो, जिसके लिए किसी भी भाषा की शब्दावली त्याज्य न हो, जहाँ प्रयोग की गुंजाइश हो। और, अज्ञेय ने एक संपादक रूप में यह स्वतंत्रता सप्तक के सभी कवियों को दिया। यही कारण है कि इसमें प्रगतिवादी कवियों की भी कविताएँ हैं और प्रयोगवादी

कवियों की भी। यह एक क्रांतिकारी कदम था। अज्ञेय चाहते थे कि इन कवियों की कविताओं में आधुनिक युग की समस्त चेतना अभिव्यक्ति पा सके। ध्यातव्य है कि कुँवर नारायण विचारधारा की प्रतिबद्धता से ज़्यादा महत्वपूर्ण, ज़िन्दगी से वाबस्तगी को मानते हैं। इसलिए जब एक साक्षात्कार में उनसे 'वाद' से जुड़ाव के विषय में प्रश्न पूछा गया तो उन्होंने दो टूक शब्दों में कहा- "मैं नहीं जुड़ा, लोगों ने जोड़ दिया। मैं तो कविता से जुड़ा, बस। नया, पुरातन, मार्क्सवादी, प्रयोगवादी...लोगों ने जोड़ा।"[25] नयी कविता ने आधुनिक हिंदी कविता में नये अध्याय जोड़े हैं। ज़िन्दगी को देखने के तरीके और उसकी अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर यह एक क्रांतिकारी कदम था। नये कवियों ने वैज्ञानिक दृष्टि को महत्त्व दिया। किसी भी तरह के प्रयोग से इंकार नहीं किया। नयी कविता ने 'रूप' और 'कथ्य' के स्तर पर जो बुनियादी सवाल उठाये, उसे कुँवर नारायण ने ज़रूरी और समय की माँग के रूप में स्वीकारा है।

**संदर्भसूची:**


1. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द , पृष्ठ- 54
2. नामवर सिंह, नयी कविता के प्रतिमान, पृष्ठ-3
3. गजानन माधव मुक्तिबोध, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, पृष्ठ-12
4. धर्मवीर भारती, मानवमूल्य और साहित्य, पृष्ठ-176
5. जगदीश गुप्त, नयी कविता : स्वरूप और समस्याएं, पृष्ठ-48
6. अज्ञेय, हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृष्ठ-52
7. इन्द्रनाथ मदान, आधुनिक कविता का मूल्यांकन, पृष्ठ-17
8. शम्भूनाथ सिंह,प्रयोगवाद और नयी कविता, पृष्ठ-42
9. (सं) गोपेश्वर सिंह, विजयदेव नारायण साही रचना संचयन, पृष्ठ-143
10. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह ठेढ़ा है, पृष्ठ-106
11. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृष्ठ-104
12. धर्मवीर भारती, अन्धा युग, पृष्ठ-60
13. गजानन माधव मुक्तिबोध, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, पृष्ठ-117
14. वही, पृष्ठ-108
15. (सं) अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृष्ठ-5
16. वही, पृष्ठ-154
17. वही, पृष्ठ-6
18. वही, 155
19. वही, 155
20. वही, पृष्ठ-155

21.वही, पृष्ठ-156

22.कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-112

23.(सं) आशीष त्रिपाठी, कविता की ज़मीन और ज़मीन की कविता, 108

24.(सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-73

25.(सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-79

## 2.4 युगीन विसंगतियों के बरक्स कुँवर नारायण की कविता:

कुँवर नारायण की कविताएँ अपने समय की विसंगतियों का प्रतिपक्ष रचती हैं। कभी किसी के दबाव में रहकर कुँवर जी ने काव्य-रचना नहीं की इसलिए उनकी कविताएँ भी स्वाधीन चेतना की वाहक रही हैं। क्षणिक लोभ-लाभ में पड़कर अपने नैतिक मूल्यों से कभी कुँवर जी ने समझौता नहीं किया इसलिए उनकी कविताओं का भी समझौतावादी रुख नहीं है। यह सच है कि कुँवर जी की कविताओं में प्रतिरोध के स्वर जहाँ भी हैं वो संयत हैं परन्तु एक सशक्त प्रतिरोध के लिए जिस वैचारिक दृढ़ता की आवश्यकता होती है वह कुँवर जी के व्यक्तित्व में हमें देखने को मिलता है। ऐसे वक्त में जब पद और पुरस्कार के लालच में कई साहित्यकारों ने अपनी कलम को सत्ताधारी पार्टियों की इच्छा के अनुरूप ढाल लिया है; कुँवर नारायण लेखक की आज़ाद ख़याली को महत्त्व देते हैं। उन्हें इस बात का इल्म है कि किसी संगठन में शामिल हो जाना या किसी गुट का हिस्सा बन जाना एक कवि, लेखक या कलाकार के लिए आसान विकल्प है, अपनी सुरक्षा को सुनिश्चित करने का। परन्तु इस विकल्प को चुनते हुए कई बार लेखक को अपनी रचनात्मकता से समझौता करना पड़ता है। इस संदर्भ में कुँवर जी लिखते हैं-"अच्छे लेखन का हित उसके स्वाधीन रहने में है। लेखक के लिये संगठनों, आन्दोलनों, गुटों आदि की सदस्यता भी उसकी उस आज़ादी को प्रदूषित कर सकती है, जिससे उसके लेखन की आधारभूमि बनती है। किसी हद तक 'अकेलापन' एक जागरूक लेखक की नियति है। संगठनों से उसको सुरक्षा मिल सकती है, लेकिन उस सुरक्षा के लिए उसे बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ सकती है-रचनात्मक और वैचारिक स्वतंत्रता के स्तर पर समझौता करके। अकेले पड़ जाने के जो भी ख़तरे हैं,उनसे बचकर लिखना, लेखन की बुनियादी शर्तों से कतराकर लिखना है।"[1]

लेखन की बुनियादी शर्तों से समझौता करना दरअसल लेखकीय गरिमा से समझौता करना है। एक लेखक अपने समय और समाज को बहुत कुछ दे सकता है परन्तु ऐसा तभी संभव है जब वह क्षणिक लाभ और सामान्य 'लोकप्रियता' से पहले बृहत्तर लोक-कल्याण की बात सोचे। क्षणिक लाभ से ऊपर उठने का नैतिक साहस और आत्मबल ही किसी लेखक को कालजयी बनाता है। तुलसी और कबीर अगर आज इक्कीसवीं शताब्दी में भी प्रासंगिक नज़र आते हैं तो इसलिए कि उन्होंने अपने समय से ऊपर उठने की चेष्टा की। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उन्होंने बृहत्तर लोक-कल्याण की बात की। यही कारण है कि लोक ने कभी उन्हें विस्मृत नहीं किया।

कविता की संस्कृति का लोक से जुड़ाव तभी संभव है जब कवि, कविता की बुनियादी शर्तों से समझौता न करे। ऐसे वक्त में जब अधिकांश लोगों की चेतना पर स्थूल व्यावसायिक दृष्टि का गहरा प्रभाव है, कवि की नैतिक ज़िम्मेदारी और बढ़ जाती है। आज जब हम अपने आस-पास के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन को देखते हैं तो हमें निराशा हाथ लगती है। व्यक्ति के मूल्यों में लगातार क्षरण हो रहा है। मनुष्य की बढ़ती महत्वाकांक्षाओं ने उसके भाव-जगत को संकुचित कर दिया है। कुँवर जी की कविताओं में हम ज़िन्दगी को बरतने का एक अलग अंदाज़ पाते हैं। कुँवर जी की कविताओं में उस जीवन-सत्य की खोज का प्रयास दृष्टिगोचर होता है, जिससे जीवन अमरता पाता है। इन कविताओं में उन मूल्यों के प्रति आग्रह का भाव है जो जीवन की अनश्वरता का बोध कराये। वर्तमान परिदृश्य में कविता की जीवन में भूमिका बतलाते हुए कुँवर नारायण लिखते हैं-

"बढ़ती हुई यांत्रिकता, व्यावसायिकता और उपभोक्तावाद के दबाव में एक कवि की यह चिंता भी शायद बेमानी नहीं कि मनुष्य के स्वभाव में मौजूद उस सुंदरता और भाव-जगत की संपदा का अवमूल्यन और विनाश न हो जो हमारे जीने को मात्र स्थूल आवश्यकताओं की पूर्ति से परे

भी एक अर्थ और आयाम देते हैं। इस कोशिश में कविता एक ऐसे कोण से जीवन को देखने, समझने और शब्द देने की कला है जो भाषा के माध्यम से हमें यथार्थ और उदात्त से एक साथ जोड़ती है। कबीर के शब्दों में कहें तो वह 'हद' भी है और 'बेहद' भी।"[2]

जीवन को उदात्त बनाने की प्रक्रिया में संलग्न कवि, दार्शनिक प्रतीतियों में भी जीवन के पोषण का आधार खोजता है। उसके लिए उस समृद्धि का कोई मोल नहीं जिसका आधार निरीह आहुतियाँ और अबोध तड़पनें हों। कुँवर नारायण जब आत्मजयी जैसी कृति लिखते हैं तो वे बार-बार अपने समय में लौटते हैं। और जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती है अपने मूल आशयों में कठोपनिषद की घटना का विवरण कम और अपने युग-सत्य का दस्तावेज अधिक बनती जाती है।कुँवर नारायण की काव्य-प्रतिभा अपने युग के यथार्थ की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है। नचिकेता जैसे चरित्र के माध्यम से कवि युगीन सत्य को चुनौती देते हैं। शारीरिक जीवन जीते हुए भी शरीर के प्रति अनासक्त रहने का जो भाव नचिकेता में है, वह मामूली नहीं है। वह एक असाधारण जीवन-दृष्टि से संचालित भाव है जिसका उद्देश्य जीवन को जीवन से बड़ा कुछ दे जाना है। जीवन को मात्र भौतिक साधनों तक सीमित करके न देखने का यह परिणाम है कि मृत्यु भी नचिकेता को डराती नहीं है। वह उसमें भी जीवन को सार्थक बनाने की संभावनाएँ खोजता है। उसे स्वार्थ और छल से जीने से ज़्यादा प्रिय वह मृत्यु लगती है जो जीवन के अर्थों को विस्तार दे।'आत्मजयी' में कवि ने 'मृत्यु' पर जो विचार किया है उसका मूल उद्देश्य उस असाधारण निधि को खोजना है जो मृत्यु से भी अधिक शक्तिशाली हो। इस काव्यग्रंथ की भूमिका में कवि इस ओर इशारा करते हैं-

"मृत्यु के चिन्तन से जीवन के प्रति निराशा ही पैदा हो, ऐसा आवश्यक नहीं- कोई नितान्त मौलिक दृष्टिकोण भी जन्म पा सकता है। मृत्यु की गहरी अनुभूति ने जीवन को असमर्थ कर दिया हो, इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण ऐसे उदाहरण मिलेंगे जहाँ चिन्तक की दृष्टि कुछ इस तरह

पैनी हुई कि वह मृत्यु से भी अधिक शक्तिशाली कुछ दे जाने के प्रयत्न में जीवन को कोई असाधारण निधि दे गया।"[3]

नचिकेता का प्रयास इसी असाधारण निधि को प्राप्त करना है।उसे उन अमर जीवन-मूल्यों की तलाश है जो जीवन को बृहत्तर आशयों से जोड़ सके। जब हम नचिकेता की इस प्रकृति को अपने समय के बरक्स देखते हैं तो नचिकेता का व्यक्तित्व हमारे समय के भूल-चूक का सुधार मालूम होता है। जीवन को स्थूल इन्द्रिय सुखों तक सीमित कर लेना हमारे समय का युग-सत्य है। दफ़्तरों, दुकानों और कारखानों तक सीमित करके हमने ज़िन्दगी के फैलाव को रोक दिया है। कुँवर नारायण की कविताओं में हम जटिल मनोदशाओं से गुज़रते हुए एक कवि को पाते हैं।वह कवि जो जीवन का निवेश किसी बड़ी योजना में करना चाहता है। यह बृहत्तर योजना भौतिक से अधिक आत्मिक उन्नयन पर बल देने वाला है। ऐसे प्रयासों के महत्त्व को कवि जानते हैं। इसलिए उन्हें विश्वास है कि जब वे नहीं होंगे तब भी उनके द्वारा स्थापित मूल्य होंगे। उन्होंने आज जिस जीवन-शैली का चयन किया है वह युग-युगांत तक कवि की पक्षधरता का प्रमाण होगा। 'परिवेश : हम तुम' में 'एक स्थापना' शीर्षक कविता में कुँवर नारायण अपने जीवन की जो स्थापना प्रस्तुत करते हैं, वह तत्कालीन समय की मूल प्रवृत्ति के ठीक विपरीत है-

"जब मैं नहीं

मेरी ओर से कोई स्थापित करेगा मेरे वर्षों बाद

कि आज भी कहीं जीवन था-

क्योंकि केवल पहियों और पंखों वाली इस बे-सिर-पैर की सभ्यता में

दफ़्तरों, दुकानों और कारखानों से

अस्वीकृत होकर भी

मैंने जीना पसन्द किया !”[4]

कवि को यह पता है कि दफ़्तरों, दुकानों और कारखानों में स्वीकृति की शर्त ज़िन्दगी की मूल प्रकृति से समझौता करना है। आज के मनुष्य ने इस समझौते को अपनी दिनचर्या में शामिल कर लिया है। अब सवाल उठता है कि ज़िन्दगी की मूल प्रवृत्ति से समझौता कर क्या मनुष्य-मनुष्य रह पाएगा। कवि को यह एहसास है कि जब वे इस संसार में नहीं होंगे तब उनकी ओर से कोई और इस बात की गवाही देगा कि जिस समय में अधिकांश लोगों ने दफ़्तरों, दुकानों और कारखानों में अपने जीवन को खपा दिया था उस समय कवि उस चेतना का प्रतिनिधित्व कर रहे थे जिसने इस मानसिक गुलामी की प्रतिस्पर्द्धा में शामिल होने से इंकार कर दिया। आज के मनुष्य ने जीवन के मायनों को सीमित कर दिया है। कुँवर जी जीवन के मायनों को विस्तार देने वाले कवि हैं। वे मानवीय जीवन को उसकी पूरी संभावनाओं के साथ विकसित होते देखना चाहते हैं। वे मानव-जीवन की गरिमा को समझते हैं, इसलिए बलि के नाम पर की जाने वाली हत्याएँ उन्हें असहज करती हैं। ‘आत्मजयी’ का नचिकेता उस सामूहिक चेतना पर प्रश्न-चिह्न खड़ा करता है जो वरदान की चाहत में निरीह आहुतियाँ देने से परहेज नहीं करता। किसी की हत्या में किसी के कल्याण का मार्ग ढूँढने का यह उपक्रम नचिकेता को आश्चर्यचकित करता है-

“तुम्हारे इरादों में हिंसा,

खंग पर रक्त-

तुम्हारे इच्छा करते ही हत्या होती है!

तुम समृद्ध होगे

लेकिन उससे पहले

समझाओ मुझे अपने कल्याण का आधार

ये निरीह आहुतियाँ। यह रक्त। यह हिंसा।

ये अबोध तड़पनें। बीमार-गायों-सा जन-समूह।"[5]

'आत्मजयी' का कवि अपने आस-पास के परिवेश को देख रहा है। उन धार्मिक आडम्बरों को देख रहा है जिसमें बलि प्रथा ईश्वर की भक्ति का अंग बन गया है। ध्यातव्य है कि हम जिस समय में जी रहे हैं, वह विसंगतियों से पटा हुआ है। मानवीय विसंगतियों से पटे इस युग में कवि का असहज होना लाज़मी है, लेकिन असहजता के बावजूद स्वयं को अनष्ट रखना और ज़िन्दगी के सच्चे आशयों की तलाश करना कुँवर जी की मानवीय प्रतिबद्धता को दर्शाता है। दरअसल एक कवि का स्वयं को अनष्ट रखना, चेतना की उस अवस्था को जागृत रखना है जिसमें तमाम प्रलोभनों और दबावों के बीच भी व्यक्तित्व की गरिमा बरक़रार रह सके। मानवीय सभ्यता तत्कालीन समय में ऐसे विचारों की कीमत समझे या न समझे परन्तु भविष्य में मानवता ऐसे विचारों और मनोवृत्तियों की कर्ज़दार रहा करती है। कुँवर जी भी इस बात के लिए आश्वस्त हैं कि जब भविष्य में वे नहीं रहेंगे तब उस वक्त भी उनका लिखा उनके आज के प्रयासों का साक्षी होगा-

"जब मैं नहीं

यह सब जो लिख रहा हूँ-

होगा-साक्षी-

कि मैंने जीने का प्रयत्न किया,

अजीब लोगों के बीच

जो मुझे अजीब समझते रहे,

लांछित और अपमानित लोग

जो मुझे ग़रीब समझते रहे,

मैंने अनष्ट रखा

अपने को पाया, सिद्ध किया और दे गया।"[6]

हमारे समाज में कई ऐसे लोग मौजूद हैं जो श्रम करते मजदूर को छूने तक से कतराते हैं। जिसने ख़ुद अपने शरीर पर कभी मिट्टी नहीं लगने दिया वह श्रम की कीमत भला क्या जाने! वर्तमान समय में प्रत्येक तबके ने अपने से नीचे एक तबके को तलाश लिया है। हर तथाकथित ऊपरी तबका अपने से निचले तबके से नफ़रत करता है, घृणा करता है और श्रेष्ठता-बोध के भाव में जीवन गुज़ारता जाता है। ध्यातव्य है कि कुँवर नारायण एक संपन्न व्यवसायी परिवार से ताल्लुक़ रखते थे परन्तु जिस सादगी को उन्होंने ताउम्र अपने व्यवहार और भाषा में ज़िंदा रखा वह आज के समय में विलक्षण है। कुँवर नारायण जानते हैं कि सादगी अभाव का नाम नहीं है, वह एक संस्कृति है। एक ऐसी उदात्त संस्कृति जिसमें मिट्टी को छूने से व्यक्ति का वस्त्र गन्दा नहीं होता। सादगी उस उदात्त संस्कृति का नाम है जो व्यक्ति में समभाव को विकसित करता है। खेत में काम करने वाला मज़दूर और मल्टीनेशनल कंपनी में काम करने वाला अधिकारी जबतक एक भाव से नहीं देखा जाएगा तब तक सादगीपूर्ण जीवन का कोई भी दावा झूठा है। कवि शर्मिन्दा हैं उस जीवन-शैली को देखकर जिसने सादगी को अभाव का पर्याय समझ लिया है-

"तुम्हारे कपड़ों का दोष है

मिट्टी का नहीं

जो उसे छूते ही मैले हो गए तुम।

मुझे शर्म आती है

तुम्हें शर्मिन्दा देखकर,

मिट्टी से ज़्यादा तुम्हें गन्दा देखकर।

सादगी अभाव की नहीं

एक संस्कृति की परिभाषा है।"[7]

हमारे समय की एक बड़ी भूल यह है कि हमने इतिहास और संस्कृति का ग़लत पाठ प्रारंभ कर दिया है। और, ये कोई आज की बात नहीं है, हमने इस ग़लत पाठ की आदत डाल ली है। हम निरंतर इस पाठ को दोहराए जा रहे हैं। कुँवर नारायण की कविताओं में इतिहास और संस्कृति के सही पाठ की कोशिश है। जिस प्रकार वे भारतीय संस्कृति के फ़लक को विस्तृत करके देखते हैं ठीक उसी प्रकार इतिहास की गलियों में उनके प्रवेश करने का अंदाज़ भी अलग है।कविताओं में इतिहास को बरतने के उनके अंदाज़ को 'आजकल कबीरदास' और 'खुसरो' जैसी कविता तथा 'कुमारजीव' जैसे खंडकाव्य के माध्यम से समझा जा सकता है। इतिहास की पुस्तकों में जिस प्रकार इतिहास को पढ़ाया जा रहा है कुँवर जी उस तरीके के खिलाफ़ हैं क्योंकि उनका मानना है कि इतिहास के इस तरह के पाठ की अपनी खामियाँ हैं। इन तरीकों से इतिहास के सही आशय पाठक तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। पाठक सत्ता, युद्ध और राजाओं के इतिहास को इतिहास की मुख्य घटना समझ लेते हैं जबकि वह इतिहास का एक अंश भर है। कुँवर जी अपनी कविताओं में जिन प्रतीकों और चिह्नों का उपयोग करते हैं उनके अंश इतिहास में मौजूद हैं,

परन्तु कुँवर जी की कविताओं में वे प्रतीक इस रूप में प्रयुक्त होते हैं कि वे वर्तमान अर्थ-संदर्भों और अपनी ऐतिहासिक शब्द-यात्रा को एक साथ ध्वनित करते हैं। अपने कई साक्षात्कारों और भेंटवार्ताओं में कुँवर नारायण ने इतिहास को देखने के अपने नज़रिये के बारे में ज़िक्र किया है। वे सिर्फ़ महलों और खंडहरों में प्रतीक को नहीं तलाशते हैं बल्कि इंसानी मनोवृत्तियों में भी उन्हें ऐतिहासिक प्रतीक जीते-जागते नज़र आते हैं। उनकी कविताएँ इन्हीं प्रतीकों का संधान करती हैं। बकौल कुँवर नारायण- "जिस प्रकार का इतिहास हम लोगों को पढ़ाया जाता रहा है किताबों में, मेरी उससे कोई सहानुभूति नहीं रही। अपनी कविताओं में मैंने उसे राजाओं के इतिहास या विजेताओं के इतिहास की तरह नहीं देखा है। पहली बार, एक साधारण आदमी की तरह कोशिश की है कि मैं इतिहास की गलियों में घुसूँ, उन प्रतीकों के माध्यम से या उन चिह्नों के माध्यम से जो आज भी मुझे अपने चारों ओर दिखाई देते हैं। यह जरूरी नहीं कि ये प्रतीक और चिह्न किसी खँडहर या इमारत के ही हों। कभी-कभी मुझे आदमी की मानसिकता में भी मुझे वे चिह्न दिखाई देते हैं, जिनका कि बहुत पुराना इतिहास हो सकता है, जैसे तानाशाही को ले लें या उसके सौहार्द विनम्रता को ले लें। ये कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो आज की भी हैं और आज से पहले की भी हैं। इनका भी इतिहास है और इनके कारण भी इतिहास में बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुई हैं।"[8]

कुँवर नारायण की इतिहास संबंधी कविताओं का जब हम सूक्ष्म निरक्षण करते हैं तो पाते हैं कि इन कविताओं में घटनाओं से ज़्यादा मनोवृत्तियों और प्रवृत्तियों पर बल है। कैसी विडंबना है कि एक खूबसूरत दुनिया को हमने इलाकों में तब्दील कर दिया है। इस पूरी प्रक्रिया में सामूहिकता के भाव की हमने तिलांजलि दे दी। सामूहिकता और सद्भाव की जगह प्रतिस्पर्धा ने ले ली है। प्रतिस्पर्धा भी ऐसी कि जिसमें ईमान के अर्थ को ढूंढना बेमानी नज़र आये। विगत शताब्दी में हमने पाया कि लगभग प्रत्येक देश ने ख़ुद को शक्तिशाली बनाने के चक्कर में

लड़ाके में तब्दील कर लिया है। शान्ति स्थापित करने के लिए भी युद्ध लड़े गये हैं, लड़े जा रहे हैं और इसका कोई अंत भी नहीं दिख रहा। कुँवर नारायण की कविताओं में हम उनकी उस बेचैनी को महसूस करते हैं जो इस युद्धोन्मत दुनिया को देखकर उपजा है। बार-बार अपनी कविताओं में वे न सिर्फ़ युद्ध को नकारते हैं बल्कि उस हिंसात्मक प्रवृत्ति का भी प्रतिरोध करते हैं जो युद्ध के पीछे की मनोदशा को निर्मित करता है। कुँवर जी जानते हैं कि इस दुनिया को बचाने के नाम पर जो युद्ध लड़ा जा रहा है उससे भी इस दुनिया को ही ख़तरा है-

"छोटी सी दुनिया

बड़े-बड़े इलाके

हर इलाके के

बड़े-बड़े लड़ाके

हर लड़ाके की

बड़ी बड़ी बंदूकें

हर बन्दूक के बड़े-बड़े धड़ाके

सबको दुनिया की चिन्ता

सबसे दुनिया को चिन्ता"[9]

लड़कर शान्ति पाने की कामना करने वाले समय के हम सब गवाह हैं। हिंसा कभी शान्ति स्थापित करने का रास्ता नहीं हो सकती, इतनी छोटी-सी बात देश के सत्ताधीशों को समझ नहीं आती है जिसका परिणाम दो विश्वयुद्धों की त्रासदी के रूप में इस मानव सभ्यता ने

देखा है। कवि-मन इस छोटी-सी दुनिया को बड़े-बड़े बंदूकों के धमाकों से थर्राता हुआ नहीं देखना चाहता है। बौद्धिकता, राजनीति के उस दांव-पेंच का सृजनात्मक प्रतिरोध करती है जिसमें युद्ध को आवश्यकता घोषित कर दिया गया हो। 'कुमारजीव' उसी बौद्धिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है जो हर काल में सत्ता की निरंकुशता और युद्ध-नीति का प्रतिपक्ष रचने के लिए प्रतिबद्ध है। कुमारजीव केवल अनुवादक मात्र नहीं है, वह एक जीवन-दर्शन है जो बुद्धिमत्ता, मैत्री और प्रेम में विश्वास करता है तथा हिंसा और युद्ध को खारिज़ करता है-

"आश्चर्य होता

कितना अन्धा है आज भी

युद्धों में आदमी का विश्वास

और कितना कच्चा है

बुद्धिमत्ता, मैत्री और प्रेम में

उसका आत्मविश्वास"[10]

कुँवर नारायण की कविताएँ हमारे समय की कई विसंगतियों का प्रतिपक्ष रचती हैं। अगर हम वैश्वीकरण के प्रभाव पर ही नज़र डालें तो पाएँगे कि इसने मनुष्य को उपभोक्ता मात्र बना डाला है। बाज़ार में एक बहुत बड़ी शक्ति है कि वह हमारी सोच और समझ को भी हाईजैक कर लेता है। आज बाज़ार हमारे सामने सिर्फ़ वही चीज नहीं परोस रहा जिसकी हमें ज़रूरत है बल्कि स्थिति यह है कि वस्तु बाज़ार में पहले उतर जाती है फ़िर विज्ञापनों के माध्यम से उसकी ज़रूरतों का निर्माण किया जाता है। कुँवर जी का बाज़ार को देखने का नज़रिया बिल्कुल अलग है। बाज़ार की भीड़ में भी कुँवर नारायण अकेलापन तलाश सकते हैं क्योंकि वस्तुओं के बीच खड़े

होकर भी उन्होंने ख़ुद को विज्ञापनों के प्रलोभन से बचाए रखा। कुँवर जी बाज़ार और अपने संबंधों पर जब लिखते हैं तो उनका लिखा आज के समय के लिए इसलिए और भी प्रासंगिक हो जाता है क्योंकि वह हमें नवीन दृष्टि देता है। यह एक ऐसी दृष्टि है जो बाज़ार के विज्ञापन की भाषा का प्रतिपक्ष है। बकौल कुँवर नारायण-

"वैसे सच तो यह है कि मेरे लिए

बाज़ार एक ऐसी जगह है

जहाँ मैंने हमेशा पाया है

एक ऐसा अकेलापन जैसा मुझे

बड़े-बड़े जंगलों में भी नहीं मिला,

और एक खुशी

कुछ-कुछ सुकरात की तरह

कि इतनी ढेर सी चीज़ें

जिनकी मुझे कोई ज़रूरत नहीं!"[11]

ध्यातव्य है कि ज़िन्दगी सिर्फ़ हमारे स्वयं के अनुभव तक सीमित नहीं होती। उसका अनुभव क्षेत्र बहुत व्यापक है। एक कवि के रूप में कुँवर नारायण की आवाजाही लगातार बाहर और भीतर की दुनिया में बनी रही है।वे जीवन अनुभव के विस्तार के लिए केवल निज से परे नहीं जाते बल्कि काल की सीमाओं का भी अतिक्रमण करते हैं। इतिहास और मिथकों में जीवन-अनुभवों को तलाशना केवल उनकी काव्य-अभिव्यक्ति का तरीका नहीं है बल्कि एक

कवि के रूप में यह उनकी सजग चेतना की गवाही है। वे जब नचिकेता को केंद्र में रखकर 'आत्मजयी' की रचना करते हैं तो नचिकेता के जीवन-अनुभवों को आत्मसात कर लेते हैं, जब वाजश्रवा को केंद्र में रखकर 'वाजश्रवा के बहाने' जैसी कृति रचते हैं तो वाजश्रवा के जीवन-अनुभवों को आत्मसात कर लेते हैं और जब कुमारजीव को केंद्र में रखकर 'कुमारजीव' की रचना करते हैं तो उसके जीवनानुभवों को हमारे समय के सवालों से जोड़ देते हैं। अपने कई साक्षात्कारों में कुँवर नारायण ने लेखक की यह जवाबदेही बतायी है कि उसमें अपने निजी अनुभव से बाहर के अनुभव की खोजबीन की ताक़त होनी चाहिए- "जीवन को अक्सर हम केवल अपने ही अनुभव तक कुछ इस तरह सीमित मान लेते हैं कि उनका विशदीकरण नहीं हो पाता। मनुष्य के बाहर और भीतर की दुनिया एक व्यक्ति के निजी अनुभवों से कहीं ज्यादा बड़ी होती है; उसके उत्खनन और खोजबीन के साधनों का भी उपयोग कर सकने की क्षमता लेखक में होनी चाहिए। प्रखर रचनात्मक प्रतिभा केवल अपने ही नहीं दूसरों के अनुभवों को भी आत्मसात कर सकने में समर्थ होती है, तभी उसके अपने अनुभवों को भी वह व्यापकता, गहराई और सम्पन्नता मिल पाती है जो श्रेष्ठ साहित्य का विशेष गुण माना गया है।"[12]

कुँवर जी की कविताएँ हमारे जीवनानुभवों को विस्तार देती हैं। इन कविताओं को पढ़ने वाला पाठक व्यापक जीवन अनुभवों से परिचित होता है। आज के मनुष्य ने अपनी दिनचर्या इस तरह की बना ली है कि उसे जीवन एक आयामी दिखता है जबकि जीवन बहुस्तरीय है। दैनिक यथार्थ के रूप में आज का मनुष्य जिस दबाव को रोज महसूस करता है, ज़िन्दगी उस दैनिक यथार्थ और दबाव से इतर भी है। कुँवर नारायण जब बाहर और भीतर की दुनिया के उत्खनन की बात करते हैं तो उनकी नियत मनुष्य की दृष्टि में विस्तार करना होता है। ध्यातव्य है कि जीवन की व्यापकता अनंत है इसलिए इसे सिर्फ़ अपने अनुभव तक सीमित मान लेना जीवन और स्वयं के साथ ज्यादती है। एक कवि के रूप में कुँवर नारायण अपनी यह जवाबदेही सुनिश्चित करते हैं

कि वे अपने समय के मनुष्य को सिर्फ़ वर्तमान के जीवन-अनुभव तक सीमित न रख मानव की लम्बी ऐतिहासिक जीवन-यात्रा से अवगत कराएँगे। कुँवर नारायण की कविताओं को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि इस कार्य में कवि बहुत हद तक सफल हुए हैं। यही कारण है कि उनकी कविता वर्तमान के स्थूल जीवन का अतिक्रमण कर सूक्ष्म-जीवनानुभवों को महसूस करा सकने में कामयाब हुई है। इस संदर्भमें ओम निश्चल लिखते हैं-"कुँवर नारायण के लिए कविता स्थूल की साधना नहीं है, वह जीवन के सूक्ष्म संकेतों, अनुभवों को दर्ज करने का दूसरा नाम है।"[13]

आज के मनुष्य की यह विसंगति है कि वह अपने जीवन को स्थूल घटनाओं तक सीमित कर लिया है। उसने अपनी अंतरात्मा में झाँकना बंद कर दिया है। कुँवर नारायण की कविताएँ एक भिन्न तरह की जीवन-दृष्टि को प्रमाणित करती हैं। अमूर्त अनुभव को मूर्त बना देने वाले शक्तिशाली शब्द कुँवर जी की कविताओं में इतनी सहजता से आते हैं कि उन कविताओं का पाठक जीवन को अनुभूति और चिंतन के विभिन्न स्तरों पर ग्रहण करता है। जीवन सिर्फ़ उतना नहीं है जितना दिखता है, जीवन उससे कहीं ज़्यादा विस्तृत है। कुँवर जी की कविता हमें जीवन के उस क्षेत्र में ले जाती है जहाँ व्यावसायिकता की पहुँच न हो। हम जिस समय में जी रहे हैं उस वक्त की परिस्थितियों में यह आसान काम नहीं है। कवि को डर है की उद्योग-धंधों से भरे समय में अलग सोचना कहीं लोगों को जुर्म न लगे-

"पचास करोड़ उद्योगधंधों से लथपथ समझ को

जब भी इस्तेमाल करना चाहता हूँ

किसी ख़ास तरह

तब लगता है

कहीं यह भी कोई जुर्म न हो

बहुतों के मामलों में

बहुतों से अलग राय रखना !"[14]

कवि दुनिया की निग़ाह से जीवन को देखने के बजाय जीवन को देखने के लिए अपनी नज़र पैदा करते हैं। उनके लिए सफ़लता के मायने भी वो नहीं हैं जो उपभोक्तावादी संस्कृति ने तय किये हैं। जिस ऊँचाई को प्राप्त करने के लिए आज का मनुष्य रात-दिन एक कर रहा है वह भौतिक ऊँचाई कुँवर जी के लिए मायने नहीं रखती। वे अपनी कविताओं द्वारा महत्वाकांक्षाओं की बर्बरता से मनुष्य की आत्मा को बचाना चाहते हैं क्योंकि जीवन के सुख से ज़्यादा वे जीवन में आत्मिक विकास को महत्त्व देते हैं। जीवन-विवेक को महत्त्व देते हैं। निम्न पँक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"क्या हम अभी भी

उन्हीं नीचाइयों में खड़े हैं

जहाँ ऊँचाइयों का असर पड़ता है?

क्या ये सीढ़ियाँ हमें

उस सबसे ऊँची वाली जगह पर पहुँचा सकती हैं

जहाँ मीनारें ख़त्म हो जातीं

और एक मस्तक शुरू होता

ताजपोशी के लिए?"[15]

जीवन-विवेक के महत्त्व को बतलाती ये कविताएँ अपने समय की विसंगतियों से मुक्ति का राह सुझाती हैं। जीवन के सुख की जगह जीवन की सार्थकता कुँवर जी की कविता की केन्द्रीय चिंता है। मनुष्य की जीवन-शक्ति बाज़ार के अधीन न हो; उसकी संवेदनाएँ यांत्रिक न हों इसी कोशिश में कुँवर जी की कविताएँ लीन हैं। किसी भी तरह की सामाजिक आर्थिक भेदभाव को नकारती ये कविताएँ अपने समय का प्रतिपक्ष रचती हैं। जीवन में किसी भी तरह की कट्टरता को कुँवर जी की कविताएँ नकारती हैं और प्रेम को प्रश्रय देती हैं।

**संदर्भ ग्रन्थ :**


1. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-81

2. (सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-13

3. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-7

4. कुँवर नारायण, परिवेश : हम तुम, पृष्ठ-92

5. कुंवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-24

6. कुँवर नारायण, परिवेश : हम तुम, पृष्ठ-92

7. कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-85

8. (सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-135

9. कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-41

10.कुँवर नारायण, कुमारजीव, 97

11.कुँवर नारायण, इन दिनों-12

12.(सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-42

13.(सं) ओम निश्चल अन्वय : साहित्य के परिसर में कुँवर नारायण,पृष्ठ-107

14.कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-68

15.वही, पृष्ठ-88